|| ओ३म ||

शंका निवारण

ईश्वर की सृष्टि के अद्‌भुत व्याख्याता पूज्यपाद गुरूदेव श्रृंगी मुनि कृष्णदत जी महाराज द्वारा विशेष योग समाधि मे,देवयान की आत्माओ को सम्बोधित प्रवचनो का संकलन

प्रकाशक :
वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)
अन्तरजाल सम्पादक : श्री सुकेश त्यागी – अवैतनिक
अन्तरजाल विशेष सहयोग : डा0सतीश शर्मा (अमेरिका) – अवैतनिक
अन्तरजाल पुस्तक संस्करण : प्रथम प्रेषण
सृष्टि सम्वत् : 1,96,08,53,112
विक्रम सम्वत् : ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वितीया, 2068
ईस्वी सम्वत् : 19 मई, 2011
नक्षत्र : ज्येष्ठा
पर्व : देवर्षि नारद जयन्ती

गुरुदेव का जीवन

14 सितम्बर 1942, उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद मे एक बालक का जन्म हुआ।

बालक जन्म से ही एक विलक्षण से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी वह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा मे, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण और उसके बाद पुरातन संस्कृति पर आधारित 45 मिनट के लगभग एक दिव्य प्रवचन होता। बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ मे आवाज अस्पष्ट होती और जैसे आयु बढने लगी वैसे ही आवाज और विषय दानो स्पष्ट होने लगे। पर एक अपठित बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा, इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था। प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा, इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था।

इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनो से ही हुआ। कि यह सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालो मे श्रृंगी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल मे आदि ब्रह्म के शाप के कारण इस युग मे जन्म का कारण बनी। गुरुदेव इस जन्म मे भले ही अपठित रहे, लेकिन शवासन की मुद्रा मे आते ही इनका पूर्वजन्मित ज्ञान, उदबुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष–स्थ आत्माओ का दिव्य उद्‌बोधन, प्रवचन करते और शरीर की स्थिति यहॉं होने के कारण हम सबको भी इनकी दिव्य वाणी सुनाई देती। इन पंवचनो मे ईश्वरीय की सृष्टि का अद्‌भुत रहस्य समाया हुआ है, ब्रह्माण्ड की विशालता, सृष्टि का उद्देश्य, विभिन्न कालो का आंखो देखा वर्णन भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का दर्शन क्या कुछ दिव्य न हीं है इन प्रवचनो मे ये किसी भी मनुष्य का, समाज का और राष्ट्र का मार्ग दर्शन करने का सामर्थय रखते है।

20 वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्य और मार्गदर्शन करते रहे।

दिल्ली के कुछ प्रबुद्ध महानुभवो ने प्रवचनो की इस निधि को शब्द ध्वनि लेखन उपकरण के द्वारा संग्रहित करके, पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए वैदिक अनुसन्धान समिति नामक संस्था का गठन किया। जिसके अर्न्तगत सन् 1962 से प्रवचनो को संग्रहति और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस दिव्यात्मा ने पूर्व निर्धारित 50 वर्ष के जीवन को भोगकर सन् 1992 मे महाप्रयाण किया।

इस अन्तराल इनके बहुत से प्रवचन, शब्द ध्वनि लेखित यन्त्र के द्वारा ग्रहण किये गये। जिनको धीरे–धीरे प्रकाशित किया जा रहा है।वैदिक जीवन और वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप इनमे समाया हुआ है। उसके सम्वर्धन, संरक्षण और प्रसारण के लिए हर वैदिक धर्मी के सहयोग की अपेक्षा है। जिससे वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति से निहित यह महान ज्ञान जनमानस मे प्रसारित हो सके।

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

शंका निवारण २ से ५०

।। ओ3म्।।

''शंका निवारण'' की भूमिका

पाठक एवं श्रोता गण!

आपके सामने यह एक छोटी सी पुस्तक जिसमें ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी का जीवन परिचय तथा उनके सम्बन्ध में साधारण जनता द्वारा की गई अनेक शंकाओं का निवारण है, प्रस्तुत है। इसको पढ़कर आपकी अनेक भ्रान्तियां स्वयं ही दूर हो जाएंगी।

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी स्वयम् में एक अपने ढंग के निराले अद्वितीय व्यक्ति हैं क्योंकि बिना पढ़े लिखे व्यक्ति के द्वारा इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण प्रवचन इससे पूर्व प्रायः न किसी ने सुने हैं न देखे हैं। जहाँ वे प्रवचन करने जाते हैं वहाँ उनके विषय में जनता जिज्ञासावश अनेक प्रश्न पूछती है कि वे लेटकर क्यों प्रवचन करते हैं? उनका सिर प्रवचन करते समय क्यों हिलता है? वे यदि शृङ्गी ऋषि हैं तो हिन्दी में क्यों प्रवचन करते हैं? आदि–आदि। कई सज्जन तो कई शंकाएं भी करते हैं जैसे ब्रह्मर्षि तो पढ़े लिखे हैं क्योंकि इतना उच्चकोटि का प्रवचन एक अनपढ़ व्यक्ति के लिए जैसे ब्रह्मर्षि जी हैं करना असम्भव है या यह स्वयं नहीं बोलते यह तो टेप रिकार्ड (जो उनका प्रवचन टेप करने के लिये साथ होता है) बोलता है। इस समिति ने ब्रह्मर्षि जी का विषय हाथ में लेने से पहले उनके ग्राम में जाकर अच्छी प्रकार जांच की थी कि वे कहीं नहीं पढ़े और वे (शंका करने वाले) स्वयं जाकर इसका पता लगा सकते हैं। प्रवचन करते समय कुछ समय के लिए टेप बन्द भी कर दिया जाता था और कई स्थानों पर तो टेप लगाया भी नहीं जाता था और शंका करने वालों को पास बिठा लिया जाता था कि वे अपनी आंखों से देखें कि टेप तो बन्द है परन्तु ब्रह्मर्षि जी का प्रवचन चल रहा है। इन सारी बातों को देखते हुए ब्रह्मर्षि जी के बारे में जो भी प्रश्न हुए हैं और शंकाएं सामने आई हैं उनके निवारण हेतु यह छोटी सी पुस्तक लिखी जा रही है इसमें ब्रह्मर्षि जी का जीवन परिचय और उनके बारे में जो–जो प्रश्न पैदा हुए हैं उनका उत्तर दिया गया है। उनके प्रवचनों को समझने के लिए भी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.) नई दिल्ली।

।। ओ3म्।।

सम्पादकीयम्

आज के विषम युग में धर्म की राह पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है। अतः यह उक्ति 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम् पथस्तत् कवियों वदन्ति' इस युग में पूर्णतः ठीक है। धर्म पथ पर बढ़ने की बात दूर रही अधिकांश जनता तो इस विज्ञान की चकाचौंध में इतनी दृष्टिविहीन हो गई है कि धर्म के सही अर्थ भी नहीं जानती। ऐसी दशा में उपनिषद्कार की यह घोषणा 'नन्धेनेव नीयमाना यथान्धाः' जैसे अन्धा दूसरे अन्धों को राह दिखलावे वाली कहावत अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। किन्तु फिर भी मनीषी विद्वानों को उचित है कि वे यथासंम्भव प्रयास करते रहें और यदि ऐसे कुछ व्यक्ति अपने जीवनों को ही साध लेवें तो भी कम से कम धर्म की ज्योति तो जलती ही रहेगी तथा उससे कुछ न कुछ प्रकाश भी फैलेगा।

यह पुस्तक जिसका तृतीय संस्करण आपके कर–कमलों में प्रस्तुत है, ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज का जीवन–वृत तथा उनसे सम्बन्धित शंका चर्चाओं का समाधान रूप है। अतः इसमें कतिपय विशिष्ट विद्वानों, योगी–सन्यासी आदि की सम्मितियां संकलित हैं और एतद् विषयक ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों से कुछ अंश, जो नाना प्रकार की जिज्ञासाओं व भ्रान्तियों का निवारण करते हैं। यद्यपि सामन्य जनता के मार्गदर्शन हेतु 'महाजनाः येन गता स पंथा' अर्थात 'महान् पुरुष जिस रास्ते पर चले, वही धर्म है' के अनुसार वैदिक अनुसंधान समिति ने इस पुस्तक का प्रकाशन करना अपना कर्त्तव्य समझा, तथापि मनु महाराज की 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' की उक्ति को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक नर–नारी की आत्मा इतनी निश्छल व सशक्त होती है कि वह सत्य असत्य का निर्णय शीघ्र ही कर देती है और इससे उत्तम व सुलभ अन्य कोई कसौटी नहीं हो

सकती। अतः यदि मानव बिल्कुल सरलता पूर्वक 'ऋजुताम् ब्रह्मणस्पदम्' सरलता ही परमात्मपद तक पहुँचाने में समर्थ है, इस ऋषियों की बात को स्वीकार कर निश्चित मन से बिना किसी इधर–उधर की मत–मतान्तर अथवा स्वार्थ की भावनाओं से ऊपर उठ, निज आत्मा द्वारा इस विषय पर निष्पक्ष अपने हृदय को धारणा व्यक्त करें, तो उसे इस महान् विभूति ऋषि की आत्मा के सान्निध्य में बैठ, इनके वचनामृत को पान करके स्वयम् को धन्य–धन्य मानना चाहिए।

इसी संदर्भ में जो दो प्रवचन 'कर्मों की गति' जिसमें ब्रह्मर्षि जी महाराज ने अपने इस शरीर में आने का कारण बतलाया है तथा 'योग–मुद्रा' जिसमें अपने प्रवचनों का श्वासन में होने का पूर्ण विवरण दिया है, उनको इस पुस्तक में सम्मिलित करा दिया गया है जिससे कि पाठकगण इस विषय की भली प्रकार जानकारी पा सके। कहते हैं 'प्रत्यक्ष को प्रमाण' की आवश्यकता नहीं, अतः यह अब जनता के सामने स्पष्टरूपेण प्रस्तुत है।

आत्मा अजर–अमर है और यह हमारा परम सौभाग्य है कि ऐसी विशिष्ट आत्मा आज हमारे मध्य उपस्थित है। 'कर्मणां गहना गतिः' कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है, उन्हें जानना महाकठिन है और जैसा कि ब्रह्मर्षि जी महाराज ने स्वयम् अपने श्रीमुख से वर्णन किया है, यह उनके अपने लाखों वर्ष पहले किये गये कर्मानुसार जीवन–यात्रा चल रही है। अतः ऐसी परिस्थिति में हमारा सबका यही कर्तव्य है कि हम यथासंभव निज शक्ति व सामर्थ्यानुसार अपना–अपना योगदान देवें और जो उपदेशामृत प्राप्त हो रहे हैं, उनसे अपने जीवन को सफल बनावें।

देवेश
सम्पादक, वैदिक अनुसंधान समिति, (पंजी.)
नई दिल्ली।

।। ओ3म् ।।

चतुर्थ संस्करण

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतमयी वाणी को पोथी के रूप में संकलन करके जैसे–जैसे जन–समूह में पहुँचाया जा रहा है वैसे–वैसे निरन्तर श्रद्धालुओं एवम् जिज्ञासुओ का अपार प्रवाह भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से इस अमूल्य परमपिता–परमात्मा के ज्ञान–विज्ञान के लिए बहता हुआ चला आ रहा है। क्योंकि प्रत्येक प्राणी अपने आत्म–कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहता है। ब्रह्मर्षि जी ने वेद–मन्त्रों का उद्‌गीत गा करके उनकी सरल व स्पष्ट शब्दों में व्याख्या करते हुए ऋषि–मुनियों के जीवन पर दर्शाया है जिससे मानव अपने जीवन में अपनाने का प्रयास करके आत्मवत् बन जाए। नवीन श्रद्धालुओं एवम् जिज्ञासुओं की पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के जीवन, प्रवचन करने की योग–मुद्रा, पूज्य महर्षि महानन्द जी, वेद–मन्त्र एवम् प्रवचन सम्बन्धी उठती हुई शंकाओं का समाधान करने के उद्देश्य से इस ''शंका–निवारण'' पोथी को पुनः से प्रकाशित करने की आवश्यकता जन–समूह से पिछले कई वर्षों से व्यक्त की जा रही थी। उसी को शान्त (समाधान) करने के लिए और इस कलयुग में आदि–गुरू पूज्यपाद ब्रह्मा जी के प्रिय शिष्य पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज ने योग–मुद्रा में समाज को परमपिता–परमात्मा का ज्ञान–विज्ञान अर्पित करके लुप्त होते हुए वैदिक साहित्य को पुनः से जाग्रत किया है इसको विस्तार से उन्हीं के प्रवचनों के द्वारा स्पष्ट किया गया है। ऋषि–मुनि समाज के उत्थान लिए अपने जीवन को किस प्रकार न्यौछावर करके देवयान को लौट जाते हैं यह ब्रह्मर्षि ऋषि जी के जीवन से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

मंत्री
वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.)
नई–दिल्ली।

१. प्रथम खण्ड

ऋषिकल्प ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज का जीवन परिचय

उत्तर–प्रदेश के गाजियाबाद जनपद में मुरादनगर के निकट स्थित खुर्रमपुर–सलीमाबाद गाँव में एक निर्धन, अशिक्षित, कबीर पन्थी जुलाहे के घर इनका जन्म हुआ। उल्टी प्रक्रिया में अर्थात् उल्टे पैरों पैदा होने पर नाम रखा गया कृष्णदत्त। गाँव के अशिक्षित परिवेश में इनके जन्म समय का कोई निश्चित संकेत नहीं मिलता। फिर भी उनके परिवार के सदस्यों, उनके गाँव के समवायी शिक्षित महानुभावों के संकेतों और अन्य तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनका जन्म सन् 1942 के उत्तर चातुर्मास्यकाल आश्विन कृष्ण पक्ष तृतीया में हुआ। इनके पिताजी का नाम श्री नानक चन्द व माता जी का नाम श्रीमति सोना देवी था।

कहते हैं, जब पूज्य ब्रह्मर्षि जी लगभग दो मास की अवस्था के ही थे, एक दिवस इनकी माता जी ने इन्हें श्वासन में लेटा दिया। कुछ समय उपरान्त शिशु की गर्दन दोनों ओर हिलने लगी और होठ फड़फड़ाने लगे। इस अवस्था में शिशु को पाकर परिवार के सदस्य चकित हुए। इस क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर गाँव के ओझा–पंडित का सहारा लिया गया और भूत–प्रेत का प्रभाव मानकर तदनुरूप शिशु का उपचार प्रारम्भ हो गया। अनेक प्रकार से यातनाएँ दी जाने लगीं। परन्तु उस विशेष अवस्था में जाने की घटनाएँ बढ़ती रहीं आयु बढ़ने के साथ वाणी स्पष्ट होने पर बाल्य ब्रह्मर्षि जी उस विशेष अवस्था में जाते तो मंत्र–पाठ और कथा वाचन स्पष्ट सुनाई देते। आश्चर्य चकित ग्रामवासी गर्दन हिलने और कथा सुनने के इस विचित्र अनुभव को अपने–अपने आधार पर ग्रहण करने लगे।

छः वर्ष की आयु में इन्हें भयानक चेचक निकली। इन्हें श्वासन में लिटाए रखा जाता और विशेष उस अवस्था में जाकर इनके प्रवचन होते ही रहते थे। दोनों ओर हिलने से इनका पूरा मुख–मण्डल और सिर छिल–छिल कर फोड़े की तरह बन गए थे। पड़ौस के बूढ़े लोगों को अभी भी वह समय याद है और कोई यह नहीं कहता था कि बालक कृष्णदत्त बच जाएगा। परन्तु प्रभु की कृपा से उसकी अमूल्य निधि मानव–कल्याण के लिए सुरक्षित रही।

सामान्यतः इन्हें करवट से ही सुलाया जाता था, लेकिन जब कभी श्वासन की स्थिति बनती तो कुछ समय के पश्चात् उसी प्रकार गर्दन हिलने लगती और कथा प्रारम्भ हो जाती। धीरे–धीरे गाँव के लोगों को इनकी कथाएँ समझ आने लगीं। इनके पिता जी इनके इस अवस्था में जाने से बहुत चिन्तित रहते थे। जब ये 7 वर्ष की अल्पायु के ही थे, तो इनके पिता जी ने अपने गाँव के चौधरी खचेडू सिंह और चौधरी इन्द्रराज सिंह त्यागी के यहाँ इन्हें नौकर रख दिया। वहाँ ब्रह्मर्षि जी, पशुओं को जंगल में चराना, घास लाना, पशुओं का चारा, पानी भरना मेहमानों की सेवा करना, हुक्का भरना, और पैर दबाना, कोल्हू में गन्ना डालना, गुड़ बनाना आदि काम करते थे। वहाँ भी जब कभी वह विशेष अवस्था बनती तो कथा प्रारम्भ हो जाती थी। इस प्रकार इनका सामान्य जीवन औपचारिक शिक्षा से वंचित रहा।

पशु चराते हुए साथी ग्वाले, बालक ब्रह्मर्षि की इच्छा न होते हुए भी बल से, हाथ, पैर तथा सिर पकड़कर सीधा लेटाते और अपेक्षित रूप से गर्दन हिलाने एवं कथा सुनने का मनोरंजन करते थे। धीर–धीरे गाँव के आस पास के अन्य गाँवों में इस विचित्र बालक का तथाकथित परिचय बढ़ने लगा। ग्राम के विवाहादि उत्सवों मे विचित्र बालक को बुलाया जाने लगा और इस दिव्य प्रवचन क्रिया को मनोरंजन का साधन बनाया जाने लगा।

अन्य लोगों की तरह ब्रह्मर्षि जी भी इस अवस्था को व्याधि अथवा अन्य प्रभाव ही मानते थे। उनके परिवार के सदस्य अनेक प्रकार से उन्हें प्रताड़ित करते थे। ब्रह्मर्षि जी कष्टों से परिपूर्ण अपने जीवन को भार रूप में व्यतीत कर रहे थे। एक दिवस इनकी कथा–प्रक्रिया के पश्चात् पिता जी द्वारा आत्याधिक पिटाई किए जाने पर इनके मन में विचार आया कि यहाँ कष्ट पाते रहने से तो अच्छा है कहीं जाकर अपना इलाज कराया जाए, अन्यथा जीवन समाप्त कर दिया जाए। लगभग 15 वर्ष की अवस्था में शीत–काल की मध्य रात्रि में, लगभग एक बजे, अपने परिवार और गाँव को छोड़ कर भाग खड़े हुए। उपचार की आशा में एक–डेढ़ मास इधर–उधर भटकते हुए, बरनावा में श्री धर्मवीर त्यागी के घर जा पहुँचे। त्यागी जी इनके पूर्व नियोक्ता इन्द्रराज सिंह से सम्बंधित थे और उनका परिवार इन्हें जानता था। वहाँ इनकी कथा होती रहती। कई मास कथा चलती रही। ग्रामीण लोग आते और सुनते रहते थे। कुछ श्रद्धा से समझते हुए सुनते और अन्य कौतुहल से।

बरनावा (वारणावत) मेरठ जनपद के हिण्डन और कृष्णा नदी के संगम पर स्थित है। यहीं महाभारत काल का ऐतिहासिक 'लाक्षागृह' (लाखामंडप) का टीला है, जहाँ कौरवों ने पांडवों को अग्नि में जलाने का षड्यंत्र रचा था और सौभाग्य से पांडव वहाँ से बच निकले थे। यह टीला बड़े विशाल रूप में आज भी विद्यमान है। इसी स्थान से महर्षि महानंदजी का सम्बंध ब्रह्मर्षि जी के भौतिक–पिण्ड से हुआ, ऐसा बरनावा निवासियों से मालूम हुआ। उनका कथन है कि जिस समय प्रारम्भ में यहाँ 5–6 मास तक कृष्णदत्त जी की कथा हुई तो कभी कथा में महानन्द मुनि का कोई संकेत, अथवा नामोचारण नहीं हुआ था। एक दिन ब्रह्मर्षि जी अपने चार साथियों के साथ घूमते हुए इस लाखामंडप को देखने गये। थोड़ी देर घूम फिर कर आ गये और उसी दिन रात्रि की कथा में महानन्द जी ने यह कहा कि 'गुरू जी आज तो आप हमारे आश्रम में गए थे।' तभी से इनके प्रवचनों में महानन्द जी के प्रश्नोत्तर होने लगे।

इनके प्रवचनों से स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी पूर्व जन्मों में शृङ्गी ऋषि रहे हैं और महानन्द जी इनके सूक्ष्म–शरीर धारी, योगसिद्ध शिष्य रहे हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत की लाक्षागृह–अग्निकाण्ड स्थली पूर्व समयों से महानन्दजी की तपोभूमि रही है और ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के यहाँ पदार्पण तक महानन्द जी श्रद्धारूप में तपस्या करते रहे।

ब्रह्मर्षि जी के हृदय में इस टीले को आश्रम में परिवर्तित करने की प्रेरणा बलवती होने लगी। लोग इनके प्रवचनों की सार्थकता समझने लगे और धीरे–धीरे इनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। समीपवर्ती गाँवों में इन्हें प्रवचन के लिए बुलाया जाने लगा। इन्ही दिनों यज्ञों में इनकी रूचि बढ़ने लगी और जिस परिवार में प्रवचन/कथा करते, वहाँ यज्ञ करने की प्रेरणा भी देते। विशेष रूप से इनकी विदाई के समय यज्ञ होने लगे। ब्रह्मर्षि जी ने लाक्षागृह टीले पर यज्ञों की आयोजन की प्रेरणा दी।

आर्य जगत् के अनेक प्रतिष्ठित विद्वान इस अशिक्षित ग्रामीण युवक की विचित्र अवस्था, दिव्य प्रवचन शैली और विलक्षण वैदिक प्रभाव को देखकर इनकी ओर आकर्षित हुए। उत्तर–प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बंधित आचार्य सुरेन्द्र शर्मा गौड़ जी, श्री ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी की विलक्षण प्रवचन क्रिया एवं प्रवचन शैली से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने साप्ताहिक पत्र–'आर्यमित्र' में इनके विषय को प्रकाशित कराया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को भी लिखा और वैदिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट किया कि उनकी यह अवस्था योग की दिव्य मुद्रा है, समाधि है।

सन् 1958–59 ई॰ में वैद्य, पं॰ प्रकाश चन्द्र जी शास्त्री ने विनय नगर के आर्य समाज प्रधान को इनके विषय में बताया और इस प्रकार इनको दिल्ली बुलाने की योजना बनने लगी। अन्ततः शास्त्री जी, आकाशवाणी के डॉ॰ बनवारी लाल जी शर्मा एवं अन्य महानुभावों के प्रयत्न से **दिनांक 28 दिसम्बर, 1961** को ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज आर्यसमाज, विनय नगर में पधारे। अगले दिन, वहाँ, भारत सेवा समाज के स्थान पर इनका प्रवचन लगभग 250 जिज्ञासुओं ने सुना और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। दिल्ली में, कई दिन तक प्रवचनों के कार्यक्रम होते रहे। आत्मा–परमात्मा, प्राण की महत्ता, अनावृष्टि–अतिवृष्टि आदि अनेक विषयों पर इनके दिव्य प्रवचन हुए। अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों, दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों ने इनके प्रवचनों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुना और गम्भीर विश्लेषण हुआ।

1 जनवरी, 1962 को इनके प्रवचन को प्रथम बार टेप रिकॉर्ड किया गया। प्रत्येक दिन नवीन विषय होता था। धीरे–धीरे प्रवचनों को सुनने वालों की संख्या बढ़ने लगी। 7 जनवरी को एक विशेष यज्ञ के पश्चात् लगभग दस हजार लोगों की भव्य उपस्थिति में प्रवचन हुआ। सौल्लास निर्णय लिया गया कि इनके यौगिक बहुमूल्य प्रवचनों की निधि को रिकार्ड किया जाना चाहिए और इनकी यौगिक क्रिया एवं प्रवचन–सामग्री पर अनुसंधान होना चाहिए। शीघ्र ही **'वैदिक अनुसंधान समिति, नई दिल्ली'** का गठन किया गया। इस प्रकार प्रवचन टेप होने लगे और प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हो गया। उधर इनके लिये देश के कोने–कोने से निमन्त्रण आने लगे और इनका जीवन यज्ञों और प्रवचनों में अत्यन्त व्यस्त हो गया।

ब्रह्मर्षि जी की प्रेरणा से लाक्षागृह टीले पर एक यज्ञशाला का निर्माण कराया गया और लाक्षागृह को एक आश्रम का रूप दिया गया। तदनन्तर बरनावा आश्रम में, हर वर्ष, शिवरात्रि एवम् होलिका पर्व के मध्य दिनों में लगातार आठ दिनों का, पूज्य ब्रह्मर्षि जी की प्रेरणा से एवम् जनता जनार्दन के सहयोग से, चतुर्वेद पारायण यज्ञों का आयोजन हो रहा है और इसी प्रकार रक्षाबंधन के दिवस और उनके जन्मोत्सव पर सामवेद पारायण

यज्ञ सम्पन्न होता है। आजकल आश्रम में छः भव्य यज्ञ–शालाएँ, जहाँ हजारों–हजारों की संख्या में वैदिक श्रद्धालु यज्ञ एवं प्रवचनों के दिव्यामृत से लाभान्वित होते हैं।

ब्रह्मर्षि जी की ही प्रेरणा से लाक्षागृह आश्रम में निःशुल्क वैदिक शिक्षा के लिए एक संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना हुई। इनके योग सिद्धात्मा शिष्य ही के नाम पर विद्यालय का नामकरण हुआ। सन 1965 में लाक्षागृह–आश्रम में यज्ञों एवम् शिक्षण के प्रबंधन के लिए **'श्री गाँधी धाम समिति'** नाम से एक समिति का गठन हुआ। शनैः–शनैः, यथोपेक्षा, यहाँ पर्याप्त कमरे, गऊशाला, खेती के लिए पर्याप्त भूमि तथा ट्यूबवेल और अन्य साधनों का प्रबंध हो गया।

सम्प्रति, इस संस्कृत महाविद्यालय में लगभग 150 छात्र, वैदिक शिक्षण–पद्धति के आधार पर, आचार्य स्तर तक विभिन्न विषयों में प्रबुद्ध अध्यापकों द्वारा शिक्षार्जन कर रहे हैं। आज भी यहाँ के विद्वान आचार्य देश के कोने–कोने में यज्ञ करवा रहे हैं और ब्रह्मर्षि द्वारा वेद एवं यज्ञ–प्रचार की ज्योति को प्रभावी रूप से देदीप्त कर रहे हैं।

पूज्य ब्रह्मर्षि जी की योग मुद्रा में जाने की प्रक्रिया पर गम्भीर अनुसंधान की आवश्यकता है। यूं तो इनके प्रवचनों में ही महर्षि महानंद जी ने इस क्षेत्र में एवं पूज्य ब्रह्मर्षि जी से जुड़े सभी प्रश्नों पर व्यापक प्रकाश डाला है और यह एकदम स्पष्ट है कि पूज्य ब्रह्मर्षि जी आदि गुरु ब्रह्मा जी के वरिष्ठ शिष्य शृङ्गी ऋषि की आत्मा हैं और इनका यह जीवन आदि ब्रह्मा जी के एक श्राप का परिणाम है। त्रेता–काल में इनके ही द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाने से भगवान् राम अवतरित हुए थे। परन्तु उस विशेष समाधि अवस्था में दिए जाने वाले इनके प्रवचन, अन्तरिक्ष–स्थित ऋषि–मंडल में सूक्ष्म–शरीर धारी योगसिद्ध आत्माओं को सम्बोधित होते हैं और उनका यह शरीर एक दिव्य यंत्र की भाँति उस आकाशवाणी से पृथ्वीमंडल पर हम लोगों को प्रेरणार्थ योजित करता है। इनकी यह प्रवचन–प्रक्रिया यौगिक है, जिसे प्राणसत्ता को जानने वाले ही ग्रहण कर सकते हैं। अनेक लोगों ने इनकी यौगिक प्रक्रिया पर अनुसंधान किए हैं।

1964 में, प्रतिष्ठित योग विद्वान् स्वामी योगेश्वरानन्द जी ने इनकी योग–मुद्रा एवं प्रवचन क्रिया पर विशेष अनुसंधान किये और अपने यौगिक बल से इनकी प्रतिभा को जाना। स्वामी प्रभु आश्रित जी, स्वामी सचिदानन्द सरस्वती, डॉ रणवीर सिंह शास्त्री विद्यावाचस्पति, पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, महान वैयाकरण एवं दार्शनिक डॉ0 श्री हरिदत्त जी शास्त्री, विश्वनाथ प्रसाद जी, डॉ0 देशमुख महादेय, श्री पं0 वीरसेन जी, वेदश्रमी आदि अनेक विद्वानों ने ब्रह्मर्षि जी के योग मुद्रा एवं प्रवचन प्रक्रिया पर अनुसंधान किये और अपनी शुभ सम्मितियाँ प्रकट कीं।

1966 में, माननीय विज साहब ब्रह्मर्षि जी को हैदराबाद ले गए। वहाँ तत्कालीन शिक्षामंत्री एवं पूर्व प्रधानमंत्री श्री नरसिंहाराव जी ने खण्डुराव देसाई एवं अन्य राजनीतिज्ञों के समक्ष इनके प्रवचनों का आयोजन करवाया। 'राजा का धर्म' विषय पर हुए एक प्रवचन को सुनकर सब आश्चर्य चकित रह गए। पूर्व मंत्री श्री बलराम जाखड़ एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के सुपुत्र डॉ0 मृत्युञ्जय प्रसाद जी ने भी इनके प्रवचनों को सुना और आश्चर्यबद्ध होकर प्रशंसा की है।

इनकी योग मुद्रा में जाने की प्रक्रिया बड़ी विचित्र है। प्रवचन से पूर्व इन्हें कोई ज्ञान नहीं होता कि ये किस विषय पर प्रवचन करेंगे और प्रवचन के उपरान्त भी यही दशा रहती है। उन्हें ज्ञान नहीं रहता कि उन्हेंने कब और कैसे क्या कहा। प्रारम्भ में ये चादर लेकर श्वासन में लेट जाते हैं। चादर ओढ़ने का उद्देश्य बाह्य अशान्त प्रभाव से बचना है। 4–5 मिनट तक इन्हें सामान्य रहने का अभ्यास रहता है। उसके बाद इन्हें पूर्व स्थिति का कोई ज्ञान नहीं रहता। योगविदों के अनुसार, इसके बाद इनके प्राण एकीकृत होकर ब्रह्मरन्ध्रोन्मुखी हो जाते हैं और समाधि लग जाती है। पूज्य ब्रह्मर्षि जी अतंरिक्ष के किसी ऐसे मंडल से संबन्ध स्थापित कर लेते हैं, जहाँ योगसिद्ध आत्माएँ पूर्व जन्मों के दिव्य ज्ञान की अपेक्षा में सभा योजित होते हैं। इस प्रकार लगभग दस मिनट तक उस अवस्था में लेटे रहने के पश्चात् ये दोनों हाथों से चादर को मुख से उतारते हैं और हाथों को वक्षस्थल पर विचित्र पाठ–मुद्रा में लाते हैं। गर्दन के ऊपर का भाग दायें–बायें, दोनों ओर तीव्र रूप से गति करने लगता है, सम्भवतः यह प्राणों का संघात है, और अति मधुर ध्वनि में मंत्र–गायन प्रारम्भ हो जाता है।

मंत्र गायन में वेद–मन्त्रार्थों की प्रतिभा का भान तो होता ही है साथ ही वैदिकोत्तर काल में विकसित होने वाली किसी वेद–भाष्यी भाषा का बोध भी होता है। सम्भवतः यह ब्राह्मी का प्राचीन रूप है। मंत्र गायन समीक्षा

से ऐसा बोध भी होता है, जैसे उस काल में ऐसे विशिष्ट विद्यालय, अथवा गुरुकुल प्रणाली रही हो, जहाँ अपने प्रकार की ऐसी समवैदिकी भाषा का विकास होता रहा है। गायन तो तत्सम छन्दोबद्ध ही रहा है, परन्तु शब्द–रूप एवं मंत्र–विन्यास अपनी अलग विधा का बोध कराते हैं। लगभग दस मिनट तक मंत्रोच्चारण चलता है। मंत्रोच्चार के उपरान्त मनोहारी एवं मधुर ध्वनि में आशीर्वचन (जीते रहो) सुनाई पड़ता है और 'देखो, मुनिवरो!' सम्बोधन के साथ , एक मनोहारी और वृद्ध ऋषि तुल्य भाषा में लगभग 40 मिनट का ज्ञानगर्भित एवं विज्ञान पुष्ट प्रवचन होता रहता है। कभी–कभी प्रवचन की अवधि अधिक भी होती है।

प्रवचन की धारा–प्रवाहिता, विषय–विन्यास एवं दर्शन का स्तर इतना उत्कृष्ट एवं वैज्ञानिक होता है कि बड़े–बड़े विद्वानों का मस्तिष्क कल्पना में नृत्य करने लगता है। प्रवचन में इतनी सरसता, सात्विकता होती है कि अल्पज्ञ श्रोता भी विषय–सामग्री के ग्रहण स्तर में न होता हुआ, बंधा हुआ सा रहता है।

प्रवचनों की विषय सामग्री, ऋषि–मुनियों के वैदिक, यौगिक एवं व्यावहारिक अनुभवों, दृष्टांतों, मानव–धर्म और मानवीयता के तथ्यों से ओतप्रोत रहती है। सम्पूर्ण मानवता के लिये ब्राह्य, वैदिक ज्ञान और आचरण की ये अनुठी चर्चाएं, न केवल इतिहास, विज्ञान एवं दर्शन से जुड़ी गुत्थियों को सुलझाती हैं, बल्कि सम्प्रदायों, रूढिवादिता, साहित्य एवं इतिहास के प्रक्षेपों से भ्रमित, आज के मनाव को जीवन के सभी क्षेत्रों में आचरण योग्य विशुद्ध साकल्य प्राप्त होता है। प्रवचन की भाषा सुमधुर तत्सम हिन्दी रहती है। कभी–कभी प्रवचनों की भाषा, संस्कृत भी रहती है। कुछ प्रवचन तो पूर्णरूप से संस्कृत में ही हैं।

इनके प्रवचनों में तीन और आत्माओं–आदि गुरु ब्रह्मा (इनके पूज्यपाद गुरुदेव), इनके शिष्य महर्षि लोमश मुनि और महर्षि महानन्द मुनि की वार्ताएँ भी आयी हैं। महर्षि महानन्द जी के तो इनसे प्रश्नोत्तर, प्रायः होते रहे हैं। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् यजमान के लिए आशीर्वचनों और राष्ट्रवाद पर अपनी दिव्य टिप्पणियों से पूर्ण वार्ताएँ तो सर्व अपेक्षित रही हैं।

ब्रह्मर्षि जी की बढ़ती लोकप्रियता और प्रवचनों से पाखण्ड एवं रूढ़िवाद के युक्तियुक्त खण्डन के कारण अनेक बार उन पर शारीरिक हमले हुये है। एक बार तो औषधि रूप में उन्हें कच्चा पारा खिला दिया गया, जिसके कारण उनका शरीर फोड़े–फोड़े हो गया और हृदय तथा फेफड़ों को गहरी क्षति पहुंची है।

सामान्य अवस्था में एक सामान्य से प्रतीत होने वाले ब्रह्मर्षि जी ने अपने छोटे से जीवन काल में 5000 के लगभग वेद–पारायण यज्ञों का आयोजन करवाया, जिनमें लगभग 35 चतुर्वेद पारायण यज्ञ हैं। आज के वाम–मार्ग काल में, ग्राम–ग्राम, नगर–नगर घूम कर इस महामानव ने महर्षि दयानन्द द्वारा पुनर्जागृत वेद एवं यज्ञ–प्रचार की ज्योति को हजारों–हजारों परिवारों में देदीप्यामान कर दिया। अनेक श्रद्धालुओं को 'दैनिक–यज्ञ' में योजित किया।

आजीवन ब्रह्मचारी रहकर सात्विक एवं सादा जीवन जीने वाले ब्रह्मर्षि जी की निस्पृहता, निरभिमानता आदि सभी विचारशीलों को अत्यन्त प्रभावित करती थी। उनकी विलक्षण स्मरण शक्ति और सबके प्रति आगाध प्रेम ने उन्हें 'सभी का अपना' बना दिया था।

यज्ञों के विस्तार की भूमिका बनाते हुए और अपने दिव्य यौगिक प्रवचनों द्वारा ब्रह्म–ज्ञान का प्रसारण करते हुये, यह दिव्यात्मा 15 अक्तूबर, 1992 को ब्रह्म मुहूर्त के समय, 50 वर्ष की अवस्था में ब्रह्म लोक के लिए महाप्रयाण कर गई। यद्यपि, पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी, आज, हमारे मध्य भौतिक रूप से विद्यमान नहीं हैं, लेकिन वेद ज्ञान रूप में उनके दिव्य प्रवचन और प्रेरणाएं, सर्वदा–सर्वदा मानव मात्र का मार्गदर्शन करती रहेगी। **वैदिक अनुसंधान समीति (पंजी.) नई दिल्ली।**

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज का प्रवचन प्रकार

ब्रह्मर्षि जी द्वारा प्रवचन इस प्रकार होते हैं कि वे चारपाई अथवा तख्त पर पीठ के बल चित्त लेट जाते हैं। लगभग 15 मिनट बाद समाधि अवस्था में चले जाते हैं और उनका सिर दाएं–बाएं हिलना आरम्भ हो जाता है। उनके हाथ छाती के ऊपर आकर जुड़ जाते हैं और वे वेदमन्त्रों को लगभग 10 मिनट तक उच्चारण करते हैं। इसके बाद वे उन मन्त्रों में निहित भावों पर आधारित व्याख्यान हिन्दी भाषा में देते हैं जो कि लगभग पैंतालीस मिनट तक चलता है। व्याख्यान समाप्ति के पूर्व वे लगभग 2 मिनट वेद पाठ करते हैं।

अपने व्याख्यानों में उन्हें यह कहते सुना गया है कि उन्होंने महाराज हरिश्चन्द्र, भगवान् राम, महर्षि बाल्मीकि, भगवान् कृष्ण, महर्षि वेदव्यास और अनेक प्रसिद्ध ऋषि–मुनियों और अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के दर्शन किए हैं।

लाजपत नगर, नई दिल्ली में 3 अप्रैल, 1962 ई. मंगलवार को ''वेद ज्ञान तथा प्रकाश की नित्यता'' पर व्याख्यान देते हुए कहा (यह व्याख्यान पुस्तक नम्बर 2 प्रवचन नम्बर 1 में है) कि ''मुनिवरो! हमने तो द्वापर काल में यह देखा था कि राजा गंगेश्वर की गंगा नाम की पुत्री थी। इस गंगा से महाराज शान्तनु का विवाह संस्कार हुआ था। इसके सात पुत्र उत्पन्न होकर समाप्त हो गये थे। उसके पश्चात् इनसे गंगशील नाम का आठवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ, यह दीर्घायु हुआ। इनके समय–समय पर ब्रह्मचारी पर्जन्य, कौडिलो ब्रह्मचारी देवव्रत और भीष्म पितामह तथा गंगेय आदि नाम प्रसिद्ध हुए......''इसी प्रकार मोगा मंडी (पंजाब) में 19 अक्तूबर, 1964 को इन्द्र व्याख्या पर व्याख्यान, प्रवचन देते हुए कहा कि :–

''आओ मेरे भोले आचार्यजनों! आज हमें उस इन्द्र की याचना करनी है जो इन्द्र हमारा कल्याण करने वाला है, हमारे मानवत्त्व को पवित्र बनाता है। जिस इन्द्र ने इस संसार को रचाया है, जो इन्द्र प्रकाश का देने वाला है।

मुनिवरो देखो! भगवान् राम कैसे पवित्र थे जो (इस) इन्द्र की याचना करते और कहा करते थे कि हे इन्द्र! मुझे वैज्ञानिक बना, संसार में देवताओं की रक्षा करने वाले भाव मेरे द्वारा प्रगट कर, मैं देवव्रत बनना चाहता हूँ अपने राष्ट्र को मैं इन्द्रपुरी (स्वर्ग) तो नहीं बनना चाहता परंतु रामराज्य बनाना चाहता हूँ। परन्तु भगवन्! उसी काल में बना सकता हूँ जब आपके गुणों का ग्राही बन जाऊंगा और मेरी आत्मा बलिष्ठ होती चली जाएगी। मेरे भोले आचार्यजनो! मुझे भगवान् राम का जीवन स्मरण आता है, परमपिता परमात्मा की कृपा से भगवान् राम के दर्शन का सौभाग्य भी मिला, भगवान् राम का जीवन कितना पवित्र था। आज ''भगवान् राम अस्वति'' हमें राम का अनुकरण करना है, राम के उन गुणों को धारण करना है जिन गुणों से भगवान् राम ने अपनी अयोध्या नगरी को पवित्र बनाया और अपनी उज्ज्वल संस्कृति को पवित्र बनाया। भगवान् राम ने महाराज वशिष्ठ मुनि से एक वाक्य कहा था कि प्रभु! मैं अपने राष्ट्र को कैसे पवित्र बना सकता हूँ, मुझे एक मूल कारण निर्णय कराइये। उस समय महर्षि ने एक वाक्य कहा कि जिस राजा के राष्ट्र में राजा की अपनी संस्कृति होती है उस राजा का राष्ट्र पवित्र कहलाता है। यदि तुम अपने राष्ट्र को पवित्र बनाना चाहते हो, अपने राष्ट्र को रामराज्य बनाना चाहते हो तो राजा के राष्ट्र में एक संस्कृति होनी चाहिए। जिस राजा की संस्कृति भ्रष्ट हो जाती है, संस्कृति का स्वरूप परिवर्तन हो जाता है, राष्ट्र में सात्विकता नहीं रहती, नाना विवाद रहता है तो वह राष्ट्र न होने के तुल्य है। हे राम! आज तुझे अपने राष्ट्र को पवित्र बनाना है तो तुम्हारे राष्ट्र में (अपनी) संस्कृति होनी चाहिए।

प्रायः मानव कहता है कि संस्कृति क्या पदार्थ है? संस्कृति किसको कहते हैं? मुनिवरो! संस्कृति उसको कहते हैं जिस वाणी में......'' पूज्य ब्रह्मर्षि जी अपनी विशेष अवस्था में वेद–मन्त्रों की व्याख्या करते हुए और हमारे आदि ऋषियों की संहिताओं का पाठ करते हुए अपने प्रवचन देवयान (देवलोक) की सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं को देते हैं जोकि इनके मुख से मृतलोक में भी सुने जा रहे हैं। इस रहस्य की जानकारी हम आपको आगे चलकर करवायेंगे। अभी निवेदन कर रहे थे कि ब्रह्मर्षि जी ऋषियों की संहिता का पाठ करते हुए अपने प्रवचन करते हैं।

21 अक्तूबर 1964 की रात्रि को मोगा मण्डी में प्रवचन देते हुए बताया कि 'आज यह पिप्पलाद मुनि संहिता का पाठ समाप्त हो गया है।'' इसी प्रकार उसी नगर में 22 अक्तूबर 1964 को वेद पाठ के बाद व्याख्यान आरम्भ किया और कहा ''देखो मुनिवरो! अभी–अभी हमारा पर्ययण (वेद पाठ) समय समाप्त हुआ। हम पुनः की भांति वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। पिप्पलाद मुनि संहिता कल समाप्त हो चुकी थी। आज नवीन संहिता का पाठ करते चले जा रहे थे जिसमें बहुत कुछ विज्ञान है और यह पिप्पलाद मुनि संहिता से सम्बन्धित है। इस संहिता का नाम श्रृंगकेतू संहिता है। श्रृंगकेतु नाम के ऋषि हुए उनके नाम से यह संहिता है। ऋषि का जीवन बड़ा अग्रगण्य और पवित्र था श्रृंगकेतु मुनि महाराज सतयुग काल के अटुल मुनि के पुत्र थे। ऋषि के जीवन में अग्ने (प्रकाशमय) था, आज हमें भी अपने जीवन को अग्ने (प्रकाशमय) बना लेना चाहिए। जब नाना प्रकार का अज्ञान जो हमारे द्वारा है वह ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म हो जाता है तो बेटा! मानव का जीवन अग्ने (प्रकाशमय) कहलाता है।

आओ मेरे ऋषि मण्डल, आओ हम प्रभु की याचना करते चले जायें, जिस प्रभु ने यह वेदयज्ञ ज्ञान प्रदान किया, जिस प्रभु ने इस मनोहर संसार को रचा और एक–एक वस्तु हमारे लिए अमूल्य रचाई है। 'हे प्रभु! तेरी उदारता.........इन्होंने अपने प्रवचनों में उन संहिताओं का नाम बताया है जिनसे वे पाठ करते हैं जैसे कि अंगिरस संहिता, वायु मुनि संहिता, पिप्पलाद संहिता, शृंगकेतु संहिता, रेवक मुनि संहिता आदि–आदि। ये संहिताएं आजकल उपलब्ध नहीं हैं। जब वे नई संहिता का पाठ आरम्भ करते हैं तो बता भी देते हैं कि वे किस संहिता का पाठ है।

व्याख्यान समाप्ति के पूर्व वे लगभग 2.3 मिनट वेद–पाठ करते हैं। इसके पश्चात् करवट ले लेते हैं और अपनी सामान्य स्थिति में आ जाते हैं। सामान्य अवस्था में आ जाने के बाद उन्हें अपनी "विशेष अवस्था" में दिए गए व्याख्यान के बारे में कुछ याद नहीं रहता।

प्रवचन के समय ब्रह्मर्षि जी की गर्दन घूमने का क्या कारण है? यह राजा गार्डन, नई दिल्ली में 19 जुलाई 1964 को दिए गए प्रवचन में बताया है। यह प्रवचन पुष्प नं. 4 में योग मुद्रा नाम से छपा हुआ है। यह यहाँ संक्षिप्त में ब्रह्मर्षि जी के शब्दों में ही दिया जा रहा है।

२. योग मुद्रा

मुनिवरो! देखो हमारे शरीर में पांच प्राण कार्य कर रहे हैं, एक प्राण है जो आता है, जाता है, ऊंचे तत्त्व वायु से लेता है और महान् किलिष्ट वायु को रमण करा देता है। इसी प्रकार अपान है जो कितने अशुद्ध माँस स्थल पर रहता है, यदि घ्राण की दृष्टि से आज प्राण उपादान न करें तो मनुष्य की क्या गति होती है। भिन्न–भिन्न कर्त्तव्य हैं इनकें। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान यह पाँच प्राण हैं।

अपने–अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ बनो

जब मनुष्य निद्रा की गोद में चला जाता है उस काल में पांचों प्राण अपने–अपने स्थान पर उदि्दप्त रहते हैं और मानव की रक्षा करते हैं, उस महान, जीव आत्मा के आसन की रक्षा करते हैं। जब प्राण रक्षा करते हैं तो यह जीवात्मा कहां जाता है? जीव आत्मा उस परमपिता–परमात्मा से मिलान करता है और यह पांचों प्राण अपने–अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहते हैं। प्राण आत्मा की व्याहृतियां कही जाती हैं। जिस प्रकार यह प्राण रुद्र का रूप धारण करके अपने गृह को सुरक्षित रखने के लिए अपने–अपने स्थान पर विराजमान होकर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं इसी प्रकार प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या और ऋषि मण्डल को यदि संसार में ऊंचा बनना और संसार को विलक्षण बनाना है तो हमें भी अपने–अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ हो जाना चाहिए।

राजा का प्राण कौन है?

राजा का प्राण प्रजा है। यदि प्रजा अपने कर्त्तव्यों के पालन करने में उद्यत रहती है तो राजा भी उस की रक्षा अवश्य कर पाएगा। प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या और प्रत्येक ऋषि मण्डल अपने–अपने कर्त्तव्य लेकर आता है। आज हमें अपने कर्त्तव्यों का पालन करना है। एक–दूसरे से प्रीति से रहना है।

कल मैं योग मुद्रा की चर्चा कर रहा था। मेरे प्यारे महानन्द जी का कथन तो यह है कि आज योग मुद्रा का कोई वाक्य उच्चारण न किया जाए परन्तु कल के अपने वाक्य को मिथ्या नहीं करना चाहता "भवति कामः वन्चति कसमोसी रिधन्चता" मैं अपने उस अमूल्य वचन से मिथ्या नहीं होना चाहता जो मैंने कल कहा था, योग मुद्रा की सूक्ष्म सी रूपरेखा अवश्य निर्णय करूंगा।

बेटा! मुझे प्रतीत नहीं आज तुम इस प्रकार क्यों उच्चारण कर रहे हो। आज तक किसी काल में तुमने उच्चारण करने में हताश नहीं किया परन्तु सहायता दी, परन्तु आज सहायता से दूर चले जा रहे हो इसका कारण अब नहीं जान सका हूँ मुझें निर्णय करो।

(महानन्द) "प्रति भवतम्।"

"अच्छा।"

तो मुनिवरो! 'प्रति भवतम् अन्जति कसमोसी रूद्यान्यति कन्ससा वन्चमा कसमस्ति विद्यामानते वतोरणी न देवम् भवते विचन् संग्रा कामोश्धा।'—हास्य।

बेटा! यह वाक्य तुम्हारे लिए कदापि भी योग्य नहीं जो तुम आज उच्चारण कर रहे हो। ''शान्तम् भवति कामामः।''

तो मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! आज मैं कुछ योग मुद्रा उच्चारण करने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत पूर्वकाल में प्रश्न किया था जिसका कल भी उत्तर दिया, आज भी संक्षेप में इसका उत्तर देता चला जाऊं। इन्होंने कहा था कि हमारी यह अमूल्य आकाशवाणी आपके अमूल्य शरीर में जाती है तो वहाँ कण्ठ से ऊपर के भाग में कम्पन होती है, इसका क्या कारण है? यह विषय कुछ दूरी है और यह स्थिति कुछ न उच्चारण करने योग्य है परन्तु चलो, संक्षेप से इसका उत्तर दे रहा हूँ।

प्रवचन के समय गर्दन दाएँ—बाएँ घूमने के कारण

मुनिवरो! जैसा मैंने अभी—अभी प्रमाण दिया कि निद्रा अवस्था में आत्मा—परमात्मा से मिलान करता है और यह प्राण उसी प्रकार रक्षा करने वाले रहते हैं जैसे जब गृह का स्वामी किसी अन्य स्थान में रमण करता है तो उसके सेवकों को आज्ञा मिली होती है कि इस गृह की सुरक्षा करना, यदि सेवक योग्य हैं तो गृह की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र के सेवकों को राष्ट्र नायक की आज्ञा मिली होती हैं कि जिस प्रजा का मैं स्वामी हूँ उस प्रजा को तुम सुविधा दो और उसकी रक्षा करो। इसी प्रकार निद्रा अवस्था में जब आत्मा परमात्मा, सविता देव से मिलान करती है तो उस समय यह प्राण रक्षा करते हैं।

मुनिवरो! इसी प्रकार जब यह आत्मा शरीर से पृथक होता है और बेटा! तुम जैसी आत्माओं से पुनः की भांति इस आत्मा का मिलाप होता है तो वह जो प्राण रक्षक हैं उनका संचार पूर्व जन्मों का क्या इसी शरीरम् भवते—जो अभ्यास हमने किसी काल में किया उस अभ्यास का आक्रमण जो अनुपम मुद्रा है उन पाँचों प्राणों का आघात, सूक्ष्म प्रादुर्भूत है उनका सम्बन्ध कण्ठ से ऊपर के भाग में ब्रह्मरन्ध्र से लेकर घ्राण के निचले विभाग ''कण्ठम् भवति'' तक रहता है। इसलिए बेटा! यह कण्ठ से ऊपर के भाग की कम्पन होती है। अब यह कम्पन क्यों होती है? यह इसलिए होती है क्योंकि बेटा! हमारा यह अभाग्य समय है परन्तु रहा यह प्रश्न कि कम्पन न हो जब?

मुनिवरो! देखो इसका उत्तर यह है कि योग योगश्चति विध्यम् भवते कामाः।' जब योगीजन इस स्थिति को प्राप्त हो जाता है जो मैंने अभी—अभी वर्णन की अर्थात् जिनका कोई न कोई हृदयस्थल जो प्राण रक्षा कर रहे हैं उनका भी कुछ सूक्ष्म भूत है, सूक्ष्म तत्त्व है जिसका सम्बन्ध तन्मात्राओं से है। उन सूक्ष्म प्राणों की तन्मात्राओं द्वारा गोष्ठी होती है। तन्मात्राओं का सम्बन्ध मस्तिष्क से, ब्रह्मरन्ध्र से रहता है और ब्रह्मरन्ध्र में यह पंचमहातत्त्व जिनको पंचतन्मात्राएं कहते हैं इनका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से, अन्तरिक्ष से मिलान करता हुआ उस यन्त्र का सम्बन्ध मेधावी और प्रज्ञा बुद्धि दोनों का जब मिलान होता है तो इस आत्मा का सम्बन्ध उन महान् आत्माओं से हो जाता है। यह जो महान् प्रणम्चति आत्मा है इसका मिलान वहाँ और वह जो शरीर की कम्पन है वह बेटा! उस पूर्व अघ्राण 'आरथति' यह जो उसका अनुभव है, उन ऋषियों की जो चर्चाएं आती हैं उनके जैसे हमारे 'विचार हैं और इनका तारतम्य उस शरीर से होता है वह तारतम्य प्राणों के सहित होता है और महान् प्राणों के सहित हो करके वाक्य अपना कार्य करता है और प्राणों का जो संघात है वह उनसे देखो उनका एक 'वृन्तति यज्ञाः तनः घृते' प्राणों से उनका तारतम्य हो करके बेटा! ब्रह्मरन्ध्र की एक अनुपम गति हो जाती है और गति होने के कारण वह इस प्रकार की अनुपम क्रिया है।

आज यदि हमें इस स्थिति को पान करना है तो बेटा! बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ब्रह्मरन्ध्र में इस आत्मा को रमण कराने को विरधति कहा है। मुनिवरो! रही यह चर्चाएं कि यह महान् श्वांस भी आता है तो श्वांस तो प्राण के कारण आता है और प्राणों का तारतम्य आत्मा के साथ रहता है जैसा मैंने अभी—अभी कहा है।

बेटा! तुमने सुना होगा जब द्वापरकाल में धृतराष्ट्र ने संजय से कहा था कि हे संजय! आज मेरे पुत्र और पाण्डव पुत्र कुरुक्षेत्र में संग्राम की स्थिति में हैं मुझे उसका वर्णन कराते चले जाओ, मैं उसको नेत्रों से नहीं

देख सकता। मुनिवरो वह क्या था? पूर्वकाल में उसको 'स्वाधिविद्यानम् मम् वन्चते वर्णोति वज्ताँ भवति कच्ताः' उसको चित्रावली विद्यानन् यन्त्र कहते थे। उस यन्त्र का जब तारतम्य कुरुक्षेत्र से मिलान करा दिया तो उस तारतम्य के द्वारा उन चित्रों का अनुकरण किया जा रहा है, उनकी वाणी भी है, तारतम्य के द्वारा वहां जो कुछ होता था संजय महाराज धृतराष्ट्र को सब वर्णन करा दिया करते थे।

मेरे प्यारे! महानन्द जी का कथन है कि संजय को भगवान् कृष्ण ने दिव्य नेत्र दिए परन्तु कदापि नहीं, वह दिव्य नेत्र नहीं थे परन्तु प्रकृति से जाना हुआ एक यन्त्र था जो भौतिक विज्ञान से जाना जाता है।

गुरुजी! आधुनिक काल में उसको और कुछ कहते हैं। वास्तव में उसका तारतम्य तो नहीं हुआ जितना आप उच्चारण कर रहे हैं। इन यन्त्रों का कुछ विकास तो किया है और अभी तक चल रहा है—पूर्ण रूप से नहीं।

चलो बेटा! आधुनिक काल में उस यन्त्र को कुछ और कहते हैं परन्तु पूर्वकाल में जो कहते थे वह मैंने वर्णन किया। मुझे इसका प्रमाण देने की क्या आवश्यकता थी? इसका नाम है भौतिक विज्ञान और यह है आध्यात्मिक विज्ञान जो मनोहर तारत्म्य है वह किसी भी आत्मा से मिलान हो सकता है मानो उसका तारतम्य यहाँ भी है और वहाँ भी है। जहां उन विचारों वाला यन्त्र होता है, वहाँ वह यन्त्र उनको धारण कर लेता है।

मुनिवरो! जैसे हमने वायु मण्डल में एक वाणी का प्रसार किया कि अरे अमुक व्यक्ति तो वह उस वाणी से बोल पड़ता है क्योंकि वह उसका तारतम्य है, वह उस वाणी का सूचक है, उसी के द्वारा उसका प्रसारण हो जाता है। जैसे आज मैंने प्यारे महानन्द जी को कहा कि अरे महानन्द! तो देखो महानन्द जी वाणी से कुछ कहेंगे। क्यों? क्योंकि मेरी वाणी का, मेरे हृदय का जो तारतम्य है वह महानन्द जी से है। मेरा जो वाक्य है वह महानन्द जी का सूचक है परन्तु मैंने उस वाणी को वायुमण्डल में प्रसारित किया और जहाँ उस वाणी वाला विराजमान है उससे वाणी का तारतम्य मिलता है और उसी तारतम्य से वह मनुष्य कहता है हाँ भगवन्! जो आज्ञा हो। तो मुनिवरो यह क्या है।

इसी प्रकार हमारी आत्मा का जो तारतम्य है वह उन सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से मिलान होता है और मिलान होकर शरीर की कम्पन जो अभी वर्णन की है वह अनिवार्य है क्योंकि उस श्रुत में कोई न कोई अग्रणी होता है और अग्रणी होने के नाते उन पर प्राणों का संचालन होने लगता है, संचालन होने के नाते वह सब कम्पन स्वाभाविक हो जाती है।

बेटा! यह एक बड़ा महान् और गम्भीर विषय है, साधारण बुद्धि का विषय नहीं। यह नहीं कि आज कोई मानव किसी वेदी पर विराजमान होने वाला या व्याख्यान देने वाला योग मुद्रा का इस स्थिति का वर्णन करता चला जाए। इसको गम्भीरता पूर्वक जानने की आवश्यकता है। यह वेदी पर उच्चारण करने का विषय नहीं अनुभव व विचार–विनिमय का विषय है। विचार–विनिमय भी वह ही कर सकता है जिसको योग पर अटूट श्रद्धा होती है जैसे भौतिक विज्ञान वाले को अपने भौतिक विज्ञान पर अटूट श्रद्धा होती है इसी प्रकार आध्यात्मिक विज्ञान जानने वाले को इस विज्ञान पर अटूट श्रद्धा होनी चाहिए तब ही इस विज्ञान को जान सकता है।

आज कोई साधारण मनुष्य यह उच्चारण करने लगे कि भाई योग मुद्रा को वर्णन करो उसका क्या अनुभव है तो यह वाणी का विषय नहीं यह तो केवल आनन्द का विषय है। जिस प्रकार निद्रा अवस्था में मानव की आत्मा का जो तारतम्य है वह उस परमात्मा से लग जाता है केवल अवयव्य जड़ तुल्य रह जाते हैं यह प्राण असुत रह जाते हैं जो रक्षक हैं। कोई मानव यह कहे कि निद्रा का आनन्द कैसा है तो वह मानव कहेगा कि मुझे निद्रा आई परन्तु कोई ज्ञान नहीं रहा। यह उच्चारण नहीं कर सकता है कि उसका कैसा आनन्द होता है, केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संक्षेप में प्राप्त होता है कि जब हम निद्रा अवस्था से निवृत होते हैं तो उस समय एक महान् जीवन प्राप्त होता है जिसको महा आनन्द कहते हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! यह है आज का हमारा आदेश। मुझे अधिक परिणाम से आदेश नहीं प्रकट करना है, केवल संक्षेप से देना है क्योंकि आज मैंने वेदपाठ अधिक किया है। वेदपाठ में बड़ा आनन्द आ रहा

था हृदय उससे पुलकित हो रहा था कि आज मैं वेदपाठ ही करता रहूँ, परन्तु क्या करूँ 'भवति कामाः वेतु हिरण्यगर्भः सम् राजन्नोति कामाः देवं भवति वेतुस्ना।'

मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! आज मेरा कोई योग का विषय नहीं था, न वेद में ही योग का विषय था परन्तु संक्षेप में कुछ था, यदि मुझे समय मिलेगा और वेद पाठ में योग का विषय आएगा तो बेटा! मैं इसको और अच्छी प्रकार वर्णन कर सकूँगा। महर्षि पातजंलि जी ने योग के विषय में बहुत कुछ कहा है और महत्त्वपूर्ण वाक्य यह कहा है कि '' चित्तवृत्ति निरोधः योगः'' देखो चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करना ही योग कहलाता है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि योग की दशा में चित्त की वृत्तियों को कैसे एकाग्र किया जाए, चित्त की वृत्तियों को एकाग्र किसी भी प्रयत्न से किया जाए परन्तु करना चाहिये। वह ज्ञान से, विज्ञान से करो, किसी भी प्रकार करो, चित्त की एकाग्रता करना ही एक अनुपम योग है। इन्द्रियों का सम्बन्ध मन से होता है, मन का चित्त से होता है तो चित्त एक विशाल स्वरूप धारण कर लेता है। अब इसके आगे चलकर इसकी श्रेणियां बनती हैं—माधुक श्रेणी, अनूक श्रेणी, चक्षशणी श्रेणी, मनइन्चति श्रेणी और नाना श्रेणिएं जैसे ब्रह्म श्रेणी रोगोणी श्रेणी अधिनायक श्रेणी और जिसको ब्रह्मरन्ध्र श्रेणी कहते हैं। चित्त के विस्तार से कई प्रकार की श्रेणियां होती हैं बेटा! किसी काल में योग का विषय आयेगा तो मैं इसको अच्छी प्रकार वर्णन कर सकूँगा, आज का विषय तो केवल कम्पन के सम्बन्ध में था।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझसे कहा करते हैं कि आजका संसार जब मैं मृत लोक के मनुष्यों की भिन्न—भिन्न प्रकार की चर्चाओं को पान करता हूँ तो देखता हूँ कि जिनके हृदयों में दुर्व्यसन हैं वह आपको कोई ढोंगी कहता है, कोई पाखण्डी कहता है। यह तो मैंने महानन्द जी से पूर्व काल में कहा था कि यह तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का अनुपम आशीर्वाद है और क्यों आशीर्वाद कहा करता हूँ क्योंकि जब सत्यवादी मनुष्यों पर किसी प्रकार का आक्रमण किया जाता है तो मानो कि सत्यवादी मनुष्य से किसी काम में कोई पाप हो जाए तो वह भी नष्ट होता रहता है। मैंने उस जन्म में पाप किया था और यदि आज का संसार पाखण्डी या ढोंगी कह कर नहीं पुकारेगा तो बेटा! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वाक्य मिथ्या ही जाएगा, इसलिए वाक्य मिथ्या न होने के कारण आशीर्वाद मानता हूँ। परम्परा से मैं इन विचारों को मानता चला आया हूँ। आज का यह संसार तो उच्चारण करता रहेगा और करता आया है, आक्रमण करता रहेगा परन्तु तुम अपने विचारों को मत त्यागो संसार में।

जो मनुष्य आपत्तियों से अपने महान् विचारों को त्याग देता है उससे अधिक कोई पापी नहीं होता संसार में। उसका कारण यह है कि यह प्रकृति का आक्रमण है, मनुष्यों के विचारों का आक्रमण है और यदि इन आक्रमणों में वह मनुष्य अपनी वृत्तियों से हिल गया या उसकी शान्त मुद्रा क्रोध में छा गई तो उसका मानवत्व कोई महत्त्वदायक नहीं। मेरे पूज्य गुरुदेव ने मुझे जो आज से लाखों वर्ष पूर्व आदेश दिया था उसको भोग रहा हूँ और भोगता चला जाऊँगा जब तक इसकी अवधि हैं जो किया हुआ कर्म है वह भोगना प्रत्येक मानव को अनिवार्य है और भोगना चाहिए, आनन्दपूर्वक भोगना चाहिए, क्योंकि वह कर्म हमने किया है, न करते तो न भोगते।

आज का हमारा यह आदेश अब समाप्त होने जा रहा है। आज का हमारा यह आदेश बहुत सूक्ष्म था। प्रारम्भ वाक्य में आदेश चल रहा था कि हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए जैसे वायु वेग में रमण कर रही है, वृक्ष में उससे कम्पन भी आती है परन्तु स्थिर है, अपनी छाया को नहीं त्यागता इसी प्रकार जो ऊंचे पुरुष होते हैं वह इस संसार में वायु रूपी विचारों से विचलित नहीं होते। विचार रूपी वायु मानव को विचलित करा देती है, आज उस वायु से विचलित न बनो, यदि तुम विचलित बन गए तो जीवन समाप्त हो जाएगा। इसलिए एक होना जानो, संसार में मिलकर कार्य करो, एक वृत्ति बनाकर कार्य करो। यदि तुम्हें भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों से ऊंचा बनना है तो सब प्रकार से प्रगतिशील बनना है, प्रगतिशील बनकर अपने जीवन को शिरोमणि बनाना है, सर्वोपरि पवित्र बनाना है।

धन्य हो भगवन्! गुरुजी आज का आदेश तो बड़ा शिरोमणि और प्रिय लगा परन्तु समय सूक्ष्म।

(हास्य)....यह तो बेटा! तुम्हारा नित्यप्रति उच्चारण करने का एक अभ्यास हो चुका है जैसे माता का प्रिय बालक अपनी माता को मनाने के लिए एक वाक्य को बारम्बार कहा करता है यह ही दशा तुम्हारी बन चुकी है बेटा।

(हास्य).....भगवान गुरुओं के द्वारा भी बननी चाहिए। गुरुओं के द्वारा यह वृत्ति नहीं बनेगी तो आज यह जीवन किसी काल में भी ऊँचा न बनेगा भगवन्।

अच्छा! धन्य वेतु शान्तम्।

तो मुनिवरो! अब यह आदेश समाप्त हो गया है। आज हम अपने कर्त्तव्य के विषय में उच्चारण कर रहे थे जिस प्रकार हम किए हुए कर्मों के फल भोगने में अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं इसी प्रकार प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या और प्रत्येक ऋषि मण्डल को, राजा–महाराजा को अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। जिस काल में ऐसा होता है, वह स्वर्ग कहलाता है, उसको सतोयुग कहते हैं, महानता और विचित्रता कहते हैं। यह आज का हमारा आदेश समाप्त हो चुका है अब वेद पाठ होगा इसके पश्चात् वार्ता समाप्त। वेद पाठ। स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती महाराज (भूतपूर्व आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री) दयानन्द वेद विद्यालय, नई–दिल्ली।

३. ब्रह्मर्षि जी की व्याख्या–प्रक्रिया सांख्य योग द्वारा विश्लेषण

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी वर्तमान जीवन में शिक्षा न मिलने पर भी वैदिक सिद्धान्तों के अपूर्व वक्ता हैं। अनुपलब्ध शाखाओं का पाठ पुर्नजन्म के संस्कारों के आधार पर सम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में करते हैं।

वे व्याख्यान के आरम्भ में सहस्त्रों जनों की भीड़ में आस–पास के नागरिक कोलाहल की विद्यमानता में धारणा अवस्था में पहुंचने के लिए 'शव आसन' में लेट जाते हैं। बाह्य बाधाओं को रोकने के लिए मुख ढक लेते हैं। यह आसन पातजंल योग की ''स्थिर सुखम आसनम्–2/46'' के आधार पर लगाते हैं। वाचस्पति टीका में इसका अर्थ किया गया है–''निश्चलं स्थिरं यत्सुखं सुखावहं तदासनम्'' एकाग्रता सम्पादन करने वाले का जिस आसन में सुख हो, बैठने वाले को जिसमें सुख प्रतीति हो वह आसन है।

गीता के छठे अध्याय, श्लोक 11 में भी 'स्थिरमासनमात्मनः, नात्युच्छ्रितम् नाति नीचं, चैलाजिनकुशोत्तरम्।'' आसान ऊंचा–नीचा न हो, हिलने–डुलने वाला न हो। वस्त्र, उस पर चर्म, उस पर कुशा बिछाया हो। ऐसा कहा है।

यहाँ भी आसन की स्थिरता कही गई है। शरीर की स्थिरता से अभिप्राय नहीं। इसीलिए आगे श्लोक 12 में कहा है–''तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः'' आसन में बैठकर मनको एकाग्र करे। चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को रोकें।

इस प्रकार ब्रह्मचारी जी सीधी सरल शैय्या तख्त पर श्वासन में दस मिनट तक रहकर, धारणा को परिपक्व कर लेते हैं। जैसा कि–''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'' (योगदर्शन 3/1) चित्त का किसी देश में बाँधना धारणा है। इस सूत्र पर श्री व्यास जी महाराज लिखते हैं–''नाभिचक्र, हृदय पंडुरीके, मूर्धनि........इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्धः इति धारणा।'' नाभि चक्र में, हृदय कमल में मूर्धा (सिर) आदि स्थानों में या बाह्य विषय में चित्त की वृत्तियों को बांध देना धारणा है।

ब्रह्मर्षि जी मूर्धा में चित्तवृत्तियों को लगभग 10 मिनट में बांध लेते हैं तब उनका दृढ़मानस संकल्प ठीक समय पर हाथों से मुख पर से चादर हटा देता है।

योग मार्ग के पथिकों में यह अभ्यास सर्व–साधारण है कि संकल्प द्वारा समय का अवधारण समाधि काल में कर लिया जाता है। महर्षि दयानन्द जी भी गंगोत्री से ऊपर हिमालय में शेर वाले बाबा के पास रहते हुए बिना किसी घड़ी या बाह्य व्यक्ति के संकेत के सप्ताह की, दो सप्ताह तक की समाधि लगाकर उठ जाते थे।

वर्तमान युग के महायोगी ब्रह्मचारी व्यास जी महाराज भी अमृतसर में ही 15.15 दिन की शून्य समाधि से मनः संकल्प द्वारा उठते रहे हैं। अमृतसर के आर्यजन आज भी इसकी साक्षी दे सकते हैं।

धारणा के परिपक्व होने के उपरान्त ध्यान आरम्भ होता है–''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'' (योग 2.3) धारणा के परिपक्व हो जाने पर ज्ञान का एक सा प्रवाह बना रहना ध्यान है।

महर्षि व्यास जी महाराज ने लिखा है–''तस्मिन् देशों ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेण अपरामृष्टो ध्यानम्'' उस देश में धारणा जहां लगाई हो वहाँ ध्यान के योग्य वस्तु की एक रस से प्रतीति ध्यान है। जब कि उसमें किसी अन्य ज्ञान की मिलावट न हो।

बिल्कुल यही दशा ब्रह्मर्षि जी की होती है, वह लगभग 13 मिनट तक संहिता मन्त्रों का पाठ करते हैं; बीच में अन्य कोई विषय नहीं आता। इस दशा में उनके दोनों हाथों का सम्पुट स्वतः हो जाता है और सिर दायें–बायें वेग से हिलता है। ''मुनिवरो'! सम्बोधन से व्याख्यान आरम्भ हो जाता है।

''तदेवार्थमात्र–निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः'' वही ध्यान समाधि बन जाता है। जब वस्तु मात्र प्रतीत हो और अपने रूप का भान न हो।

यह अवस्था हमारे विचार में सम्प्रज्ञात समाधि की है और वह भी सविचार समाधि की। क्योंकि सविचार पर 44वें सूत्र में लिखा है–''सविचारा–सूक्ष्मविषया व्याख्याता'' सूक्ष्म विषय वाली सविचार समाधि होती है। 'सूक्ष्म–विषयत्त्वं चालिगपर्यसानम्'' (1/45) सूक्ष्म विषयता अलिंग मूल प्रकृति पर्यन्त है। प्रधान प्रकृति ही निरतिशय सूक्ष्य है।

जागृत अवस्था

यह ब्रह्मर्षि जी की जागृतवस्था ही है या नहीं? क्योंकि धारणा, ध्यान और समाधि जागृत अवस्था की ही विशेष स्थितियां हैं। और जो बोलते हैं पूर्व जन्मों की स्मृति के कारण बोलते हैं। यह सब स्मृति संस्कारों के उद्‌बुद्ध होने पर होती है। योग में कहा है–''अनुभूतविषयासम्प्रमोश–स्मृति'' (1/11)।

अनुभव किए हुए विषय का सामने आ जाना स्मृति है। स्वप्नावस्था में जो स्मृति है वह भवति स्मर्तव्या होती है अर्थात् कल्पित स्मर्तव्या होती है उस स्मृति में कल्पना मिली होती है। जागृत में अभावित–स्मर्तव्या होती है अर्थात् पारमार्थिकी स्मृति होती है, सही होती है, सच्ची होती है।

साधारण अवस्था में स्मृति क्यों नहीं? साधारण अवस्था में स्मृति बहुत निर्बल होती है। खाने–पीने की बात मास की तो क्या चार दिन की भी बात स्मरण नहीं रहतीं। पर धारणा ध्यान समाधि के द्वारा ''संस्कार–साक्षात्कारणात् पूर्वजातिज्ञानम्'' (3/18) योगी संस्कारों का साक्षात् करने से पूर्व जन्मों का वृत जान लेता है, संस्कारों के उद्‌बुद्ध होने पर सब बीती बात जान लेता है। इस प्रकार पहले जन्म में अनुभव की हुई जाति आदि को प्रत्यक्ष देखता है। (भोजवृत्ति)।

इस पर व्यास जी ने कहा है–''भगवती जैगीषव्यवस्य दशसुमहासर्गेषु जन्म–परिणाम–ममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत।'' भगवान जैगीषव्य को संस्कार के साक्षात् करने से दस महासर्गों में हुए जन्म परिणाम क्रम को देखते हुए विवेक हो गया।

इस प्रकार ब्रह्मर्षि जी को समाधि होने पर पूर्व जन्मों के संस्कार और अद्‌भुत ज्ञान की स्मृति हो जाती है। अपरिग्रह सिद्धि पर भी पातजंलि महाराज ने लिखा है–''अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता–सम्बोधः'' (2/39) ''योगी जब अपरिग्रह में स्थिरता लाभ कर लेता है तो पहले जन्म में मैं क्या था, क्या–क्या काम किए? इन बातों के जानने की इच्छा होने पर सब कुछ भली प्रकार जान लेता है।'' (भोजवृत्ति)

महर्षि व्यास महाराज ने तो लिखा है–''मैं कौन था, किस प्रकार रहा, यह वर्तमान शरीर क्या है, यह कैसे, आगे जन्म में क्या होंगे, किस प्रकार बीतेगी?'' अपने विषय में सब जान लेता है। ये सिद्धियां यमों के

सिद्ध पर होती हैं। यदि ब्रह्मर्षि जी पूर्व जन्मों की बातें या ज्ञान की चर्चा स्मृति संस्कारवश करते हैं तो आश्चर्य क्यों? इसका प्रत्याख्यान क्यों?

शाप सही है

यह ज्ञान ब्रह्मर्षि जी को साधारण दशा में क्यों नहीं? विनय नगर के व्याख्यान में इसका कारण ब्रह्मर्षि जी ने ब्रह्मा जी का शाप बताया है। क्योंकि इन्होंने अपने शृङ्गी ऋषि जीवन काल में ब्रह्मा के पौत्र कुत्री ऋषि को स्वयं गुरु होते हुए अपना अपमान होने पर शाप दे दिया था और ब्रह्मा जी ने मुझे (शृङ्गी ऋषि को शाप दे दिया था) उस शाप के कारण इस पिछड़े अपठित कुल में अपठित दशा में जन्म हुआ।

क्या यह शाप की घटना सत्य है

हां, सत्य हो सकती है। क्योंकि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने योग दर्शन को प्रामाणिक माना है। योग में कहा है—''सत्य प्रतिष्ठायां–क्रिया–फलाश्रयत्वम्'' (2/36) जब सत्य सिद्ध हो जाता है तो योगी की वाणी अमोद्य हो जाती है। ''अमोधस्य वाग् भवति–धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः। स्वर्ग प्राप्नुहि इति स्वर्ग प्राप्नोति।'' योगी जब किसी को कहता है—धार्मिक हो जाओ तो वह धार्मिक बन जाता है। यदि किसी को कहता है स्वर्ग को प्राप्त कर तो वह स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। जैसे योग आदि से स्वर्ग मिलता है पर योगी तो बिना क्रिया के भी स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है और उसके वचन से दूसरे को बिना क्रिया किए उसकी वाणी से ही कह देने से ही, फल मिल जाता है। इतना स्पष्ट उल्लेख होने पर ऐसी दशा में शाप या आशीर्वाद के सत्य होने की बात को मानने में हिचकिचाहट क्यों?

ब्रह्मर्षि जी ने बताया, उन्होंने अपने शृङ्गी जीवन काल में 84 वर्ष तक सत्य का अभ्यास किया। सत्य सिद्ध हो जाने पर यह सब घटनायें घट गई हों तो आश्चर्य क्या? और ब्रह्मर्षि जी ने अपने व्याख्यान में इस शाप की बात को भी उठाया है और शाप भी कर्म बन्धनानुसार ही होता है अन्यथा प्रभु की व्यवस्था के विरुद्ध सत्याभ्यासी नहीं बोल सकता, ऐसा कहा है। सत्यसिद्ध परम योगीजन परमात्मा के अटल नियमों का उद्घाटन करते हैं हम अल्पज्ञ इसको शाप के रूप में मान लेते हैं।

क्या सिर हिलाना पाखण्ड है?

''दूध का जला छाछ फूंक–फूंक कर पीता है।'' इसमें हानि भी नहीं। पर छाछ श्वेतिमा देखकर सर्वदा ऊष्ण दूध का ही निश्चय और आग्रह नहीं करते रहना चाहिए। तथ्य को समझने का यत्न करेंगे तभी तथ्य समझ में आएगा। देखिए, हम यह पहले लिख चुके हैं यह जागृत अवस्था में समाधि अवस्था है। समाधि अवस्था में जब योगी होते हैं तो अलिंग प्रकृति पर्यन्त विचार मग्न होते हैं। महर्षि दयानन्द जी भी सम्प्रज्ञात समाधि में वेदमन्त्रों के अर्थों का विचार करते थे। अन्य योगी भी इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त वृत्ति निरोध का ही अभ्यास करते हैं। उस अवस्था में बोलते किसी को नहीं देखा। ब्रह्मर्षि जी उस अवस्था में पहुँचकर बोलते है, अभ्यास नहीं करते हैं। बोलने पर वाग् इन्द्रिय और हस्त इन्द्रिय दो इन्द्रिया क्रिया रत हो जाती है। वाणी के उच्चारण के साथ ही प्राण भी गति करने लगते हैं। इस स्थिति की विशेषता के कारण प्राणाघात से सिर हिलता है। यह ढोंग नहीं।

ढोंग मार पड़ने पर बन्द हो जाता है पर ब्रह्मर्षि जी के साथ ऐसी बात नहीं। हरिद्वार में किसी अखाड़े में ठहरे थे, रात को अचानक सीधा लेट जाने पर बोलना आरम्भ हो गया। व्याख्यान में जहां ठहरे थे उन्हीं के खण्डन का विषय आ गया। उन दोनों ने ब्रह्मर्षि जी को पीटा पर वे उसी प्रकार बोलते रहे, बोलना बन्द नहीं हुआ। यदि ढोंग होता तो पिटाई से व्याख्यान बन्द हो जाता।

एक स्थल पर ब्रह्मर्षि जी श्वासन में इसी प्रकार बोल रहे थे, वर्षा आरम्भ हो गई। श्रोता चले गए, ब्रह्मर्षि जी का बोलना जारी रहा। वर्षा भी बन्द नहीं हुई, जब यथा समय करवट ली तब बोलना बन्द हुआ। क्या यह ढोंग में सम्भव है? यह भी एक प्रश्न है, ब्रह्मर्षि जी ढोंग क्यों करते जब वे किसी से पैसा नहीं माँगते।

इनको तो यह क्रिया स्वतः होती है, जब भी सीधे लेट जाते हैं और 10.15 मिनट बाद प्रवचन आरम्भ हो जाता है।

लेट कर ही क्यों?

योग के आठ प्रकारों में से ''विशोका वा ज्योतिष्मती।'' (1/36) प्रकाश ज्योति, दिव्य नेत्र उत्पन्न करने की विधि है। व्यास महाराज ने लिखा है—'बुद्धिसत्वं हि भास्वरमाकाश' बुद्धि सत्व प्रकाशमय चमकीली है। सूर्य चन्द्र या मणि के चमक के समान भासता है। इस प्रकाश के द्वारा ही आगे योग में प्रगति होती है।

इस प्रकाश को शक्ति पात द्वारा भी प्राप्त कराने की प्रक्रिया है उसमें भी जब भी साधक बैठ जाता है यौगिक प्रक्रिया स्वतः प्रारम्भ हो जाती है। कनखल के सुप्रसिद्ध वैद्य विष्णुदत्त जी तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के व्याकरणाचार्य श्री छेदी लाल जी तथा पण्डित दिलिपदत्त जी उपाध्याय इसी प्रक्रिया के साधक थे आज भी इस प्रक्रिया के अनेक साधक हैं। वे जब अपने आसन पर बैठते हैं, तभी योग प्रक्रिया स्वतः हो जाती है। इसी प्रकार ब्रह्मर्षि जी भी सीधे लेटते हैं। तभी यह प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, इसमें असम्भवता कुछ भी नहीं है।

बिना योगाभ्यास यह कैसे?

योगी जब सिद्धियों को पार करता हुआ आगे बढ़ जाता है और उनमें नहीं फंसता है तो—**परमाणु परम महत्वान्तोऽस्य वशीकारः' (1/40)** परमाणु से लेकर महतत्त्व पर्यन्त सब योगी के वश में हो जाता है और उस समय महर्षि व्यास के शब्दों में—**''यद्वशीकारात् परिपूर्ण योगीनश्चित्तं नाभ्यासकृतं पमिकर्मापेक्षते।''** योगी जब सब पर वशीकरण प्राप्त कर लेता है तो योगी का चित्त फिर अभ्यास कृत कर्म कलाप, उपाय की अपेक्षा नहीं करता।

इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार की स्थिति के पीछे अभ्यास की आवश्यकता छूट जाती है।

इतना ज्ञान कहां से

योगज ज्ञान की दृष्टि से तो यह ज्ञान कुछ भी नहीं है पर जो कुछ ब्रह्मर्षि जी बोलते हैं यह अपूर्व पांडित्य से पूर्ण होता है। जो लोग इसे सिखाया हुआ कहते या मानते हैं उन्हें उस सिखाने वाले का तो सब प्रकार समादर करना ही चाहिए, व्याख्यानों में शास्त्रीय उलझनें बड़े अनोखे और अश्रुत पूर्व ढंग से सुलझाई जाती हैं। इस प्रकार की कुछ व्याख्यायें श्री भीमसेन जी आदि ऋषि शिष्यों आदि के लेखों में देखी गई हैं, पर जो व्याख्या श्री बह्मर्षि जी करते हैं वह वहाँ नहीं है। इनका ऊहापोह सर्वथा नया होता है। व्याख्यानों में एक नया ओज होता है। भाषा साधारण होते हुए भी भावपूर्ण होती है, अपूर्व आध्यात्मिक पुट लिए होती है।

यह सब बिना यौगिक शक्ति के नहीं हो सकता। यदि वह इनकी शाप दशा न होती या यह दशा (स्थिति) शापावस्था समाप्त हो जाए तो निसन्देह वह अश्रुतपूर्व ज्ञान राशि का उद्‌गिकरण कर सकेंगे।

''सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वंय'' (योग 3/49) सत्व और पुरुष की भिन्नता को प्रत्यक्ष जान लेने पर योगी सब भावों का अधिष्ठाता हो जाता है, सर्वज्ञ हो जाता है। सब अवस्था वाले गुणों का एक साथ बिना किसी क्रम से विवेकज ज्ञान होता है। 'विशोका' नाम की सिद्धि को प्राप्त कर लेने पर योगी क्लेश के बन्धन से रहित होकर सबका अधिष्ठाता होकर विचरण करता है।

''तारक सर्व–विषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्'' (योग 3/54) योगी सब जान लेता है। अतीत, अनागत और तात्कालिक को बिना किसी क्रम के जान लेता है। (व्यास भाष्य) इस प्रकार का अद्‌भुत ज्ञान योगी को होता है।

एक शरीर में दो आत्माएं कैसे?

ब्रह्मर्षि जी जब व्याख्यान बोलते हुए होते हैं तब बीच में महानन्द जी प्रश्न करते हैं। गुरुजी कह कर सम्बोधन करते हैं। इनके प्रश्न और अवसर मिलने पर जब इनका व्याख्यान होता है तो दोनों ही अद्‌भुत तथा प्रभावशाली होते हैं। इनके प्रश्न ही बहुत सी जनता की शंकाओं का समाधान करते हैं। इस पर महर्षि का यह सूत्र समझने और मनन करने के योग्य है—**''बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचार–संवैदनाच्च चित्तस्य पर शरीरवेश'' (योग 3/38)** कर्म बन्धन का क्षय हो जाने पर और अपने चित्त के संचार अर्थात् चित्त के शरीर से बाहर जाने और पुनः शरीर में प्रवेश करने के प्रकार को जान लेने पर योगी चित्त को अपने शरीर से निकाल कर दूसरे

शरीर में डाल देता है। उसी प्रकार इन्द्रियां भी चित्त के पीछे–पीछे दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती हैं (व्यास भाष्य)।

इस पर वाचस्पति ने लिखा है कि चित्त का अनुसरण करने वाली इन्द्रियां भी दूसरे के शरीर में यथास्थान प्रवेश कर जाती है।''

इस पर भोज वृत्ति में लिखा है–

''परकीय शरीरं मृतं जीवच्छरीरं वा चितसञ्चारद्वारेण प्रविशति।'' दूसरें के मृत या जीवित शरीर में चित्त के संचार द्वारा प्रवेश करता है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती भी इन योग की सिद्धियों को स्वीकार करते हैं पर शरीर प्रवेश पर उनका 17.71 का यजुर्वेद भाष्य देखने के योग्य है, भावार्थ में लिखते हैं–''जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधि, रूप, संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीर में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अंगों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है, अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी हो सकता है, उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिए।''

इससे स्पष्ट है योगी दूसरे के मरे या जीते शरीर में प्रवेश कर सकता है। महानन्द जी भी योगी हैं (शृङ्गी ऋषि) ब्रह्मर्षि जी को गुरु कह कर पुकारते हैं।

ये भूत–प्रेत क्यों नहीं?

(प्रश्न) यदि जीवित शरीर में दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकता है तो भूत–प्रेत के मानने से कैसे इन्कार कर सकोगे?

(उत्तर)–यदि भूत–प्रेत है ऐसा मान लिया जाए तो बड़ी भारी हानि होगी, अनर्थ होगा।

बात को सही रूप में न समझने पर इस प्रकार की शंका स्वाभाविक है। पर योगी के शरीर पर प्रवेश और भूत संचार की प्रक्रिया में महान् भेद है। योगी पर–शरीर में प्रवेश उसी समय करता है जब ''बन्धकारण शैथिल्य और प्रचार संवेदन'' योगी को हो जाती है। अर्थात् जब योगी कर्म बन्धन को ढीला कर सकता है। समाधि के प्रभाव से कर्म–बन्धन को ढीला कर लेने पर और समाधि द्वारा चित्तवहा नाड़ी को जान लेता है, तो उसके द्वारा चित्त को पर शरीर में योगी ले जाता है।

इसका स्पष्ट अभिप्राय यह निकला कि ''अहिंसा का पारंगत योगी ही दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता।'' जिनको भूत–प्रेत कहा जाता है वे तो साधारण राग–द्वेष से परिपूर्ण आत्माएं होती हैं। उन्हें योग का संस्पर्श भी नहीं होता वे एक–दूसरे के शरीर में क्या प्रवेश करेंगी। अतः भूत–प्रेत की धारणा नितान्त अशुद्ध, असंगत है। ये तो सुश्रुत में कहे कृमि जन तथा मानसिक रोग हैं अतः पर–शरीर प्रवेश की मौखिक प्रक्रिया को भूत–प्रेत से मिलान करना अपनी योग से अनभिज्ञता प्रकट करना है।

यह महानन्द कौन है?

महानन्द जी एक योगी हैं जो सूक्ष्म शरीर में हैं। स्थूल शरीर में उनका इस समय सम्बन्ध नहीं है, क्यों नहीं है? यह तो कोई प्रभु की सृष्टि के सम्पूर्ण रहस्य को समझने वाला योगी ही बता सकता है पर कुछ बातें स्पष्ट हैं जिनसे इस विषय में पर्याप्त प्रकाश मिल सकता है।

सूक्ष्म शरीर और उसकी गतिमति

सूक्ष्म शरीर के विषय में सांख्यदर्शन में लिखा है–**''सप्तदशैकं लिंगम्'' (सांख्य 3/9)** 17 और 1 अर्थात् 18 तत्वों का लिंग शरीर या सूक्ष्म शरीर होता है। महर्षि दयानन्द जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास में बताया है–''17 तत्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म–मरणादि में भी जीव के साथ रहता है।'' महर्षि ने अहंकार को बुद्धि में ही परिगणित कर 17 तत्व माने हैं। अस्तु यह सूक्ष्म शरीर भी स्थूल के आधार से ही कार्य करता है।

''तद्बीजात् संस्त्रतिः'' (सांख्य 3/3) स्थूल शरीर के बीज सूक्ष्म शरीर के कारण ही संसरण होता है। इसी से जीव एक देह से दूसरे शरीर में जाता है।

मनु जी ने कहा है–

''योनिकोटिसहस्त्रेषु सृतीश्चास्यन्तरात्मनः'' (6/63) हजारों–करोड़ो योनियों में इसी शरीर के कारण गमन होता है।

अविवेकाच्च प्रवर्त्तनमविशेषाणाम् (सांख्य 3/4) जब तक विवेक नहीं होता अर्थात् मुक्ति नहीं होती तब तक सूक्ष्म शरीर अपना कार्य करता है और मुक्ति से लौटने पर भी प्रत्येक आत्मा को सूक्ष्म शरीर मिलता है अर्थात् यह शरीर तो लाखों–अरबों वर्ष का है। जन्म–जन्मान्तरों में, नाना योनियों में स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध करता है।

''उपभोगादितरस्य'' (सांख्य 3/5) उपभोग के कारण ही स्थूल शरीर से सम्बन्ध होता है।

''पूर्वोत्मतेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य'' (सांख्य 3/8) स्वर्ग के आरम्भ में सब जन्मों से पहले उत्पत्ति वाले सूक्ष्म शरीर से ही सुख–दुख का भोग होता है। स्थूल शरीर को नहीं होता क्योंकि मृत शरीर का कोई भोग नहीं।

''न स्वातंत्रयात् तदृते छायावच्चित्रवच्च'' (सांख्य 3/12) सूक्ष्म शरीर भी स्थूल के बिना कुछ कर्म नहीं कर सकता। जैसे छाया या चित्त आधार के बिना काम नहीं करते। इसलिये योगी महानन्द जी का शरीर ब्रह्मर्षि जी के शरीर का आश्रय लेकर प्रश्न करता है और उत्तर पाता है। स्थूल इन्द्रिय के गोलक (माइक्रोफोन) के समान है। जो भी सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध करता है, उसी की विचारधारा का स्थूल शरीर सम्बन्ध करता है, उसी की विचारधारा को स्थूल शरीर प्रसार करता है।

एक सूक्ष्म शरीर के होते दूसरा सूक्ष्म शरीर कैसे आ सकता है?

सूक्ष्म शरीर का परिणाम अणु होता है। इन विशाल इन्द्रियों, गोलकों के साथ अनेक सूक्ष्म शरीर सम्बन्ध कर सकते हैं। सांख्य 3/14 में सूक्ष्म शरीर को ''अणुपरिमाणम्'' लिखा है।

क्या सूक्ष्म शरीर बिना स्थूल शरीर के रह सकता है?

हां, निश्चित रूप से रह सकता है। देखो, महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने स्पष्ट लिखा है–''जब (जीव) शरीर छोड़ता है तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है। (नवम् समुल्लास 216 पृ.)।

(प्रश्न) मर कर जीव कहां जाता है?

(उत्तर) : शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं (स. प्र. ग्यारहवां समुल्लास। बड़े अक्षर पृ. 308) इस पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने दो मन्त्रों के पद उद्धृत किए हैं ख्1, ''यमेन'' (10/14/8) ख्2, ''वायुना'' ;20/14/2) पूरे मन्त्रों को पढ़ने से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है। ''संगच्छव पितृभिः। सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन'' (ऋग. 10ए 14ए 8)

(पितृभि) मन आदि सूक्ष्म शरीर के साथ, (इष्टापूर्तेन) श्रोत और स्मार्त कर्मों के साथ, (वायुना) वायु के साथ (परमे व्योमेन) खुले आकाश में (संचस्व) जा।

''यदिन्द्रेण सरथं याथोऽश्विना,
यद् वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिः ऋभुभिः सजोषसा,
यद् वा विष्णो विक्रमणेषु तिष्ठथः।''

(अथर्व. 20ए 141ए 2)

(इन्द्रेण अश्विना सरथं याथः) आत्मा और सूक्ष्म कारण शरीरों के साथ (वायुना याथः) वायु के साथ जाओ (समोकसा भवथः) अन्तरिक्ष में साथ–साथ रहो (यद्वां विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः) यद्वा सूर्य की किरणों के विहार स्थल में ठहरो।

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि जीव शरीर छोड़ने के बाद आकाश में रहता है और क्रमानुसार यथा समय अगला जन्म लेता है। वेद में स्पष्ट लिखा है ''विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः।'' अन्तरिक्ष में ठहरो जब ठहरने की अवधि समाप्त हो जाएगी, जन्म मिलेगा। वह अवधि वर्षों की भी हो सकती है, क्षणों की भी हो सकती है।

क्या वेदों में 35 सहस्र मन्त्र हैं?

''नहीं''

फिर ब्रह्मर्षि जी ने ऐसा क्यों कहा?

ब्रह्मर्षि जी ने नहीं, महानन्द जी ने कहा। महानन्द जो शिष्य ही तो हैं, अशुद्ध भी कह सकते हैं पर वास्तव में प्रसंग को समझने की आवश्यकता है। तारीख 12.3.62 के हनुमान रोड़ के प्रवचन में महानन्द जी ने कहा है–वेद की विद्याएं कुछ लुप्त हो गई है। कुछ संहिताएं नही मिली हैं। उनका प्रसार अभी तक नहीं हुआ है। इस संसार में कुछ ऐसा तो माना है। उन्होंने (परन्तु महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने) चारों वेदों की संहिताएं नियुक्त कर दी है। परन्तु जो कुछ नहीं मिला उसे कहां से लाते?

विचारो, उनका तो जितना काम था, उतने का प्रसार कर गए। उनका ज्ञान अथाह था, उनके द्वारा समुद्र ही था। जैसा कि गुरु जी के कथानुसार वह समुद्र है। उनकी विद्या समुद्र थी। क्योंकि वे पूर्व के अटूटी नाम के ऋषि थे। उनकी आत्मा ने जन्म लिया इस संसार का कल्याण करने के लिए।

दिनाँक 13.5.62 को हौज खास में कहा–''अच्छा, देखो! हमारे चारों वेदों में बहुत से मन्त्र हैं। उन्हीं का संहिता (शाखा) रूपों में वर्णन किया गया है।''

मालवीय नगर में कहा–''स्वामी जी ने 20 हजार मन्त्र नियुक्त किए हैं। जो ऋषि ने कहा यथार्थ कहा।''

यहाँ तक तो सब ठीक है। केवल एक वाक्य संदिग्ध है। ''वेदों में सारे 35 सहस्र मन्त्र है'' या इसी प्रकार का कुछ है। इस एक वाक्य पर सारा तूल खिंच गया है।

वैसे मैंने ब्रह्मर्षि जी के लगभग 20 व्याख्यान बड़े आनन्द के साथ सुने हैं। सभी व्याख्यानों में वेद की अपूर्व व्याख्या थी जिसमें वैदिक व्याख्यानों का बुद्धि संगत, जीवन को ऊंचा उठाने वाला, अश्रतपूर्व समाधान था। उसमें कोई भी सिद्धान्त विरुद्ध बात नहीं मिली, न ही सिद्धान्त विरुद्ध राजनीति की हुल्लड़बाजी या इधर–उधर की वृथा जानकारी। व्याख्यानों में बड़ी भारी भीड़ जनता की होती है जितनी वार्षिक उत्सवों में भी नहीं होती। जनता वेद और वेद की ओर बराबर खिंची चली आती है।

यह सब होते हुए 35 हजार मन्त्रों की बात जैसे अटपटी लगती है वैसी है नहीं। क्योंकि–

;1द्ध संस्कार विधि ऐसे मन्त्रों से भरी पड़ी है जो वेदमन्त्र नहीं हैं और ऋषि दयानन्द जी सरस्वती ने उनको मन्त्र लिखा है। उनकी क्या गति है। 20 पृष्ठ पर आश्वलायन और पारस्कर के वाक्यों को ऋषि ने मन्त्र लिखा है और सबके आरम्भ में ओम् लिखा है।

ओम् अयन्त–यह भी आश्वलायन का मन्त्र कहा गया है।
ओम् अदिते आदि–गोभिलीय के मन्त्र लिखे गये हैं।
आज्य भागाहुति के भी दो मन्त्र ऐसे ही हैं।

शतपथ का ''यदस्य कर्मणो'' को भी इसी प्रकार का मन्त्र कहा गया है। सारी संस्कार विधि ऐसे ऋषि कथित मन्त्रों से भरी पड़ी हैं।

;2द्व यजुर्वेद के 40वें अध्याय में मध्यान्दिन में 17 और काण्व शाखा में 18 मन्त्र हैं। पाठ की दृष्टि से 2 मन्त्र अधिक है।

''तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य ब्यूह रश्मीन्समूह। 15।
तेजो यत्तेरूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि।
योऽसावसो पुरुषः सोहमस्मि।'' 16।। ईशोपनिषत्।।

;3द्व इसीलिए पं. भगवद्दत जी रिसर्च स्कालर को लिखना पड़ा, ब्राह्मण, उपनिषद् और श्रौत सूत्रों में अनेक ऋचाएँ हैं जो वर्तमान ऋग्वेद में नहीं मिलतीं परन्तु उनमें से कुछ उपलब्ध शाखाओं में मिल जाती हैं यथा ऐतरेय ब्राह्मण में प्रतीत पठित अनेक ऋचाएं उनकी स्थिति किस प्रकार से निर्णीत होगी? यह गम्भीर प्रश्न है।

इन सबसे ऐसा लगता है कि चारों वेदों के व्याख्यान–भूत शाखाओं का पाठ 35 हजार मन्त्र का है। इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं।

कौन से वेद का पाठ करते हैं

श्री ब्रह्मर्षि जी ने स्वयं कहा है कि हमने ''आंगिरस ''संहिता'' का पाठ किया है। ''प्रपंच हृदय'' में अथर्ववेद की शाखाओं में आंगिरस की गणना की गई है।

जिस शाखा का नाम ही मिलता हो और पाठ न मिलता हो उसका इस प्रकार उच्चारण उपलब्ध होना सौभाग्य की बात है। उस पर परिश्रम और गवेषणा होनी चाहिए न कि खोज से मुख मोड़कर उसका मूर्खतापूर्ण विरोध।

क्या ये मंत्र वेद से मिलते हैं?

जब पाठ ही शाखाओं या शाखा संहिताओं का है तो वेद में उनके न मिलने की बात सर्वथा असंगत है।

विनय नगर के व्याख्यान में–

मां धुरिन्दं नाम देवता दिवश्चगमश्चापां च जन्तवः।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघु अहं वज्रं शवसे धृष्णवाददे।

(ऋ. 10/4/2)

यह मन्त्र मोती बाग के स्वाध्याशील व्यक्ति ने ढूंढा।

व्याख्यान में आये तीन मन्त्रों के अर्थ हमने भी लिखकर दिये। आश्चर्य यह है कि तीनों मन्त्रों के सब पद ऋषिभाष्य में उपलब्ध हो गए और अर्थ बहुत बढ़िया सुसंगत निकला।

महर्षि दयानन्द जी का सिद्धान्त वही था जो शंकराचार्य जी का था।

श्री ब्रह्मर्षि जी ने बताया, महानन्द जी के मुख से–

श्री शंकराचार्य जी ने आत्मा–परमात्मा को पृथक माना, है। इनका महर्षि दयानन्द जी का वही सिद्धांत था जो श्री शंकराचार्य जी का था।

यह व्याख्यान हमने सुना नहीं पर इतनी बात हम जानते हैं कि दिल्ली के पं. गंगा प्रसाद जी ने स्वामी जी के लेखो से अद्वैतवाद सिद्ध किया था, यहां उससे विपरीत श्री शंकराचार्य जी को द्वैतवादी सिद्ध किया है।

ऋषि ने श्री शंकराचार्य जी द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद का बड़ा प्रबल खंण्डन किया है पर श्री शंकराचार्य जी का बढ़े सम्मान से उल्लेख किया है और यह भाव व्यक्त किया है कि–

''जो जीव ब्रह्म की एकता, जगत् मिथ्या शंकराचार्य का निज मत था तो यह अच्छा मत नहीं, और जो जैनियों के खण्डन के लिए उस मत को स्वीकार किया हो तो अच्छा है। (सत्यार्थ प्रकाश 15 समुल्लास)

क्या महानन्द जी से स्वीकृत शंकर के अभिमत द्वैतवाद की ध्वनि इससे नहीं निकलती कि शंकराचार्य द्वैतवादी थे फिर ब्रह्मर्षि जी पर आक्षेप कैसा?

अतः प्रत्येक विचारशील वेदज्ञ विद्वान महानुभावों से हमारी प्रार्थना है कि ब्रह्मर्षि जी की इस अलौकिक घटना पर गम्भीरतापूर्वक मनन करें, विचार करें और किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचकर विश्व को वैदिक पुनर्जन्म, परलोक और योग की विभूतियों का दिग्दर्शन करा दें।

आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री

ख्योग के सिद्धान्तात्मक एवं
क्रियात्मक अन्वेषण में संलग्न,
आचार्य, दयानन्द वेद विद्यालय, नई दिल्ली—16

ओ3म्

क्या ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी शृङ्गी ऋषि हैं?

ब्रह्मर्षि जी के अपने विशेष ख्समाधि—ज्तंदबम, अवस्था में दिए जाने वाले प्रवचनों से यह ज्ञात होता है कि वे अपने पूर्वजन्मों में शृङ्गी ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रवचनों में यह भी स्पष्ट किया कि शृङ्गी ऋषि कोई विशेष नाम नहीं परन्तु उपाधि है और यह उपाधि उस व्यक्ति को दी जाती है जो व्यक्ति या साधक वृष्टि यज्ञ और पुत्रेष्टि यज्ञ कराने में विशेष प्रवीण हो।

प्राचीन गन्थों में भी इस प्रकार का कुछ वर्णन आता है। कहते हैं कि एक समय एक राजा के राज्य में वर्षा न हुई और जब नारद जी वहां पधारे तो राजा ने नारद से कहा कि महाराज! हमारे यहां भारी अकाल पड़ रहा है। इसको दूर करने का क्या उपाय है? उस समय नारद ने कहा कि राजन्! तुम्हारे राष्ट्र के बाहर गहन वन में शृङ्गी ऋषि तपस्या कर रहे हैं यदि तुम उनको अपने राज्य की सीमा में ले आओ तो निश्चित रूप से तुम्हारे यहां वर्षा हो जाएगी। राजा ने ऋषि को अपनी सीमा में लाने के उपाय किए। शृङ्गी ऋषि के वहां पहुँचने पर राज्य में वृष्टि यज्ञ कराया गया जिससे उस राज्य में वर्षा हुई। प्रजा ने नृत्य संगीत आदि से बड़ा समारोह किया और ऋषि को सम्मानित किया इसके पश्चात् वह वन को चले गए।

इसी प्रकार ब्रह्मर्षि जी ने अपने एक प्रवचन में बताया कि उन्होंने 80 वर्ष की अवस्था में महाराज दशरथ के यहां पुत्रेष्टि यज्ञ कराया जिसके उपरान्त राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। यह हो सकता है कि जो आत्मा वर्तमान में ब्रह्मर्षि जी के शरीर में निवास कर रही है इसको अनेक जन्मों में अपने पूर्व जन्मों के अभ्यास और संस्कारों के कारण इसी प्रकार के कार्य करने पड़े हों और इसीलिए इन जन्मों में शृङ्गी ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुए हों। आज के युग में भी हम देखते हैं कि कोई अपने नाम के सामने व्यास लिखता है और कोई कुछ लिखता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह वेदव्यास जिसने महाभारत काल में वेदों का भाष्य किया वह ही वेदव्यास हों परन्तु ऐसा हो सकता हो कि वह व्यास की आत्मा दूसरे जन्मों में भी आकर उस प्रकार का कार्य कर सकती है। इसी प्रकार सतयुग से लेकर शृङ्गी ऋषि की आत्मा ने सतयुग, त्रेता और द्वापर में जब—जब उन्होंने जन्म लिया हो उस समय यह उसी रूप में ख्याति प्राप्त करने के कारण यह शृङ्गी ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुए हों और आज के जीवन में भी वे यज्ञों का ही प्रचार कर रहे हैं।

श्री ब्रह्मर्षि जी की यज्ञ में बड़ी श्रद्धा एवं आस्था है। यज्ञ में उनकी रुचि उस काल में हुई बताई जाती है, जब वह पहले—पहले बरनावा पधारे थे। उन्होंने अपने सरल व्यवहार से बरनावे के समीपवर्ती लोगों के हृदयों में अपने प्रति आदर और प्रीत की भावना पैदा कर दी। ये श्रद्धालु लोग सहर्ष उनके आदेशों पर यज्ञों

का आयोजन करते हैं और इन शुभ अवसरों पर पधार कर उन्हें कृतार्थ करने का अनुरोध करते हैं। नवम्बर 1962 में एक महायज्ञ (चतुर्वेद पारायण) ''राष्ट्र विजय यज्ञ'' के नाम से बरनावा में लाक्षागृह स्थान पर सम्पन्न हुआ। उसमें सहस्रों लोगो ने भाग लिया जिस पर लगभग छः हजार रुपयों की राशि व्यय हुई। इसी तरह उससे भी बड़ा एक महाराष्ट्र कल्याण यज्ञ बी. सी. पार्क सरोजनी नगर नई दिल्ली में इन्हीं की प्रेरणा से सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ में लगभग दस हजार रुपये की राशि व्यय हुई। इन्हें यज्ञ करवाने की अर्थात् मन्त्र इत्यादि बोलने की अनपढ़ होने के नाते इस साधारण अवस्था में जानकारी नहीं है। परन्तु बड़े प्रेम से यज्ञ में सम्मिलित होते हैं और वहां इनके प्रवचन करवाए जाते हैं। ग्रामों में, नगरों में जहां भी जाते हैं लोग अपने यहां यज्ञ करवाते हैं जिससे लोगों के अन्दर यज्ञ के लिये प्रेम बढ़ता चला जा रहा है। अब लाक्षागृह (वरनावत) बरनावा में पाँच विशाल यज्ञशाला बन रही हैं। यहां हर वर्ष एक महान् यज्ञ होने लगा है इस वर्ष भी पिछले वर्षों के समान चतुर्वेद परायण यज्ञ मार्च 90 में सम्पन्न हुआ।

कई बार ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति अगर किसी विषय के अन्दर विशेष रुचि लेता है या उस विषय में पारंगत हो जाता है तो साधारण जन भी उसको उस नाम से पुकारने लगता है। जैसे कोई क्रोध में इतना तिलमिला जाता हो कि उसको अपना होश न रहता है तो उसको दुर्वासा के नाम से पुकारा जाता है और यदि कोई व्यक्ति इधर–उधर भ्रमण करता रहता है और यहां की वहां और वहां की यहां खबरें पहुँचाता है तो उसको नारद पुकारा जाता है। इसी प्रकार से पूर्व जन्म के गौतम, कपिल, व्यास और दूसरे ऋषि हुए हैं वह दूसरे युगों में जब उनमे वह विशेषता होती है तो वह उन्हीं के नामों से पुकारे जाते हैं। इसी प्रकार यह हो सकता है कि यह आत्मा अनेक युगों में अनेक जन्मों को धारण करके भी ब्रह्मर्षि जी उसी प्रकार का कार्य करते हुए श्रृङ्गी ऋषि के नाम से प्रख्यात हुए हों। क्योंकि आत्मा को निरन्तर ज्ञान रहता है, **ज्ञान और प्रयत्न आत्मा का स्वभाविक गुण है,** इस गुण के कारण जो विशिष्ट और शुद्ध आत्माएं होती हैं, जो योगभ्यासी आत्माएं होती हैं जो देवयान (देवलोक) और मोक्ष को प्राप्त करने वाली आत्मायें होती हैं वे पूर्व जन्म के सम्बन्धों को और पूर्व जन्म के ज्ञान को जान लेती हैं। इसी प्रकार यह हो सकता है कि इस आत्मा ने जो ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के शरीर में और इस प्रकार का कार्य कर रही है इसमें अपने पूर्व जन्मों के योगाभ्यास और स्मृति के कारण वही कार्य किए हों और अपने अनेक जन्मों में श्रृङ्गी ऋषि के नाम से पुकारे गये हों। ऐसा हो सकता है।

४. ब्रह्मर्षि जी के पूर्व जन्म का संक्षिप्त वृतान्त

ब्रह्मर्षि जी ने अपने पूर्व जन्म के बारे में 9.3.1962 को रात्री के 8 बजे सरोजनी नगर, नई दिल्ली में 'कर्मों की गति' पर प्रवचन देते हुए वर्णन किया (जो कि वैदिक प्रवचन तृतीय पुष्प में अन्तिम प्रवचन है) उस प्रवचन का सम्बन्धित भाग हम यहां दे रहे हैं।

मुनिवरो! आज हमारा कर्मों के सम्बन्ध में व्याख्यान चल रहा था। बहुत ही विशाल व्याख्यान दे रहे थे। आज हम तुम्हें यह वार्ता उच्चारण कर देवें जो कार्य किसी काल में हुआ परन्तु उसकी रूपरेखा पश्चात् में निर्णय देंगे।

मुनिवरो! यह सतोयुग के काल का समय है। हमारे गुरु ब्रह्मा वेद के प्रकाण्ड पण्डित और विद्या के भण्डार थे। उनका महान् शिष्य मंडल भी था। उनके एक पुत्र महा सृष्टु मुनि महाराज थे।

एक समय महा सृष्टु मुनि महाराज अपनी तुम्बा नाम की धर्मपत्नी के साथ एक स्थान पर विराजमान थे। उन दोनों के हृदय में एक भावना उत्पन्न हुई कि हमारे कोई पुत्र होना चाहिए परन्तु पुत्र तेजस्वी हो हमारे पिता ब्रह्मा ने कहा है कि तुम दोनों को जितने समय की अवधि दी है, ब्रह्मचर्य का पालन करो और तपस्या करो। दोनों एकान्त स्थान में वेदों को विचारते रहते थे। उन्होंने अपने पिता को कण्ठ किया। उनके पिता ब्रह्मा उनके समक्ष आ पहुंचे। उस समय दोनों ने निवेदन किया, ''महाराज! अब हम एक पुत्र चाहते हैं।'' उस समय उन्होंने आज्ञा दी कि तुम अवश्य पुत्र उत्पन्न करो।

मुनिवरो! हमने सुना है कि उस समय उनके आदेशानुकूल महासृष्टु मुनि महाराज ने 'यज्ञाति यजन्ते' यज्ञ किया, भजन किया वेदों का स्वाध्याय किया और उसी के अनुकूल गर्भस्थल की स्थापना की। आगे बेटा! यह

संसार चलता रहा। कुछ समय के पश्चात् तुम्बा नाम की धर्मपत्नी से पुत्र उत्पन्न हुआ। उस बालक का जन्म–संस्कार के पश्चात् नामकरण संस्कार किया, सृष्टु मुनि महाराज ने अपने बालक का नाम कुत्री मुनि नियुक्त कर दिया।

बाल्यकाल से ही पति और पत्नी दोनों उसे इतने ऊंचे वातावरण में शिक्षा दिया करते थे कि वह वेदों का प्रकाण्ड विद्वान बन गया। जब वह 25 वर्ष का आदित्य ब्रह्मचारी बन गया, उस समय उसने अपने माता–पिता से निवेदन किया कि मुझे आज्ञा दो, मेरी इच्छा है कि मैं इस समय ''ब्रह्मे वर्चो अस्ति ब्राजनोति देतम् योगस्ते शुभः योगा भावनाये यस्तम्'' परमपिता परमात्मा की उपासना करना चाहता हूं जिससे मेरे जीवन का विकास हो। मैं उस आध्यात्मिक विज्ञान को खोजना चाहता हूँ जिसको हमारे गुरु ब्रह्मा आदि सब आचार्य खोजते चले आए हैं।

उस समय बेटा! जब उनके माता–पिता ने उसके अन्तःकरण की यह वार्ता सुनी तो वह प्रसन्न हो गए और प्रसन्न हो करके आज्ञा दी, ''बेटा! तुम्हें धन्य है। हमारे कैसे सौभाग्य हैं जो ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपनी मृत्यु को विजय पाने की सोच रहा है। पुत्र! जैसी तुम्हारी इच्छा है वैसा कार्य करो उसके अनुकूल अपने जीवन को ऊँचा बनाओ।''

उस समय वह बालक माता–पिता की आज्ञा पा करके बहते हुए वह करुड़ मुनि महाराज के समक्ष जा पहुँचे। करुड़ मुनि महाराज ने उनका बड़ा ऊँचा सत्कार किया और कहा आनन्द हो ब्रह्मचारी जी। उस समय कहा, महाराज आनन्द है। 'क्या तुम्हारे पिता भी आनन्द हैं?' उस समय कहा, विशेष आनन्द है। जब सब आनन्दपूर्वक वार्ता कह सुनाई तब बालक वहां से बहते भये अगले स्थान पर जा पहुंचे जहां बेटा! महर्षि सुदक्ष मुनि महाराज, त्वकेतु मुनि महाराज और अमरोती मुनि महाराज विराजमान थे। ऋषियों के मध्य में जाकर उनके चरणों को स्पर्श किया और स्पर्श करते हुए आनन्दपूर्वक उच्चारण की। ऋषियों ने भी जान लिया कि यह तो सृष्टु मुनि महाराज का बालक है, ब्रह्मचारी है और ऋषि बनने के लिए जा रहा है।

मुनिवरो! वहां से आज्ञा लेकर अगले स्थान पर जा पहुंचे, जहां कार्तिक मुनि महाराज रहा करते थे। अम्बेतु ऋषि, अकेतु मुनि महाराज, अंगिरा आदि आचार्य वहां विराजमान थे। अकेतु मुनि महाराज ने उनका बड़ा ऊँचा सत्कार किया।

मुनिवरो् वह काल कितना ऊँचा था जिस समय बुद्धिमानों का इतना सत्कार होता था। बुद्धिमान होने के नाते जिस ऋषि के स्थान पर जाते थे ऋषि उनका ऊँचा सत्कार किया करते थे।

वहाँ से आज्ञा लेकर बहते भये अगले स्थान पर जहाँ कपिल मुनि महाराज, मधेतु ऋषि, महाराज गंगकेतु ऋषि, प्राची मुनि महाराज और द्रुगनी और क्रणवन्ती ऋषि महाराज और भी आदि–आदि ऋषि विराजमान थे। लोमश मुनि भी विराजमान थे। दार्शनिक विषय हो रहा था। उस दार्शनिक समाज में जाकर उन्होंने सबको नमस्कार किया। आनन्दपूर्वक सबने उसका सत्कार किया। महर्षि लोमश ने कहा, ''कहिए भगवन्! आप कहां से विराज रहे हैं?'' उस समय उन्होंने कहा, ''मैं तो भगवन्! आप ऋषियों के दर्शन करने के लिए आ रहा हूं। दर्शन कर आनन्दित हो जाऊँगा।'' तब लोमश मुनि ने कहा, ''अरे! तुम कहाँ जा रहे हो? यहाँ तो दार्शनिक विषय हो रहा है। यह तो बड़ा गूढ़ विषय है।'' वह दार्शनिक समाज में विराजमान हो गए। नारद मुनि महाराज भी वहाँ थे उस समय दार्शनिक समाज में यह निर्णय किया जा रहा था कि जब एक कल्प समाप्त हो जाता उसके पश्चात् ब्रह्मा का एक दिवस माना जाता है यह इस प्रकार क्यों है? ब्रह्मा किस पदार्थ का नाम है ब्रह्मा कोई मानव है या ब्रह्मा कोई बुद्धिमान है या ब्रह्मा परमात्मा को कहते हैं?

लोमश मुनि ने निर्णय किया कि यह जो ब्रह्मा का दिवस है वह ब्रह्मा की आयु है, वह सौ कल्प के पश्चात् मानी गई है। ब्रह्मा की जितनी आयु है इतनी आयु तक यह परमात्मा के गर्भ में आनन्द लेता रहता है। बेटा! इसका विषय तो कल उच्चारण करेंगे, आज समय नहीं।

यह ऋषि बालक उस दार्शनिक समाज से आज्ञा पा करके बहते भये। शौनक ऋषि महाराज के समक्ष आ पहुंचे। शौनक मुनि महाराज ने उस ऋषि बालक का बड़ा ऊँचा सत्कार किया।

तो बेटा! जब तक उस ऋषि बालक के हृदय में कोई प्रेरणा न हुई, वह बहते रहे और अन्त में सोमभाव ऋषि के द्वार जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर प्रेरणा हुई कि जिस मन्तव्य के लिए मैं भ्रमण कर रहा हूँ अभी तक पूर्ण नहीं हुआ। मुझे ज्ञात ही नहीं रहा मुझे तो कोई गुरु धारण करना चाहिए। गुरु बना करके अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहिए।

उस समय शम्भु मुनि महाराज से कहा, महाराज! आप मार्ग में रहते हैं, आपका बड़ा ऊँचा स्थान है। यहाँ कोई ऐसा ऋषि है जो गुरु योग्य है? जो हमें ऊँचा मार्ग दिखा देवे।

उस समय उन्होंने कहा, ऐसा ऋषि तो है परन्तु हमें तो ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसा आप जिज्ञासु नहीं हैं।

उस समय बालक ने कहा, महाराज! मैं तो बड़ा जिज्ञासु हूँ, आप मुझे निर्णय तो करें?

उन्होंने कहा, यहाँ से चले जाओ। देखो! ब्रह्मा के शिष्य रहते हैं जिनको शृंग्यादि कहते हैं उनके स्थान पर चले जाओ। वह तुम्हारा सत्कार करेंगे और वह तुम्हें ऊंचे पद पर पहुँचा देंगे। उस समय ऋषि बालक ने कहा कि उनमें क्या विशेषता है? वह इस योग्य क्यों हैं?

उस समय कहा, हमने तो ऐसा सुना है कि आज 84 वर्ष हो गए हैं उन्होंने मिथ्या उच्चारण नहीं किया है, सत्यवादी है। द्वितीय वाक्य यह है कि उन्होंने अपनी आत्मा का परमात्मा से मेल करा दिया है। वह गुरु के योग्य हैं, उन्हें गुरु क्यों नहीं बनाते?

बेटा! यह वार्ता उस बालक के आंगन में आ गई। वह वहाँ से बहता भया इस आत्मा के समक्ष जा पहुँचा। उसका बड़ा ऊंचा सत्कार हुआ, उपहार में बड़े पदार्थ दिये। वह ब्रह्मचारी था, ब्रह्मचारी का सत्कार करना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। ऋषि ने बेटा! उनका सत्कार किया। सत्कार के पश्चात् वह बालक प्रसन्न हो गया और मन में उन्हें गुरु चुन लिया।

इस आत्मा ने भी गुरु के नाते उस बालक को शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। शिक्षा देने लगे, योगाभ्यास की निधि पर निधि देने लगे। यह तो न प्रति मानव का कैसा तुच्छ समय आ करके मानव को नष्ट–भ्रष्ट कर देता है। उस समय वह बालक किसी कार्य में अधूरा था। बालक ने कहा, हे भगवन्! अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं तपस्या करने के लिए तत्पर हो रहा हूँ। मैंने बहुत योगाभ्यास किया है आज मैं उस महानता को पाना चाहता हूं जिस महानता से हमारे आदि ऋषियों ने महान् विज्ञान को पाया है आज मैं वहीं जाना चाहता हूँ।

उस समय देखो इस आत्मा ने कहा, ''अरे बालक! अभी तू इस योग्य नहीं हुआ है जो तू इतनी पूर्ण निधि पर पहुँच जाएगा।''

उस समय बेटा वह गुरु की आज्ञा को नष्ट करके बहते भये–कदली बन में जा करके समाधि में लय हो गए। योगाभ्यास के नाते केवल वायु के अधीन रहकर ऐसा सुना है कि बेटा! उन्होंने 250 वर्ष की समाधि की। बेटा! गणना के अनुकूल वह 250 वर्ष की समाधि के पश्चात् भी तपस्या करता रहा, करते–करते उसे 250 वर्ष से कुछ अधिक वर्ष हो गए। जब अधिक वर्ष हो चुके तो मुनिवरो! यहाँ यह विधि मानी जाती है। जब योग में इस प्रकार आरूढ़ हों जाता है उस समय बेटा! समाधि जागृत करने के लिए ऋषिवर नियुक्त रहते हैं। आदि गुरु ब्रह्मा ने अपने पुत्र सृष्टु मुनि महाराज को नियुक्त किया कि जाओ वह बालक अपनी तपस्या में आरूढ़ हो रहा है। उन्होंने अपने योगबल से उस बालक की तपस्या को जाना। उसके अन्तकरण में वह जागृत थी, उसके योग की स्थिति शुद्ध हो गई।

उस समय क्या करें बेटा! उस बालक को अभिमान हो गया कि मैंने सभी पदार्थों को विजय कर लिया। वह वहाँ से बहते हुए संकेतु ऋषि महाराज के समक्ष पहुंचे। संकेतु ऋषि ने कहा, ''कहिये आपकी तपस्या में क्या सफलता हुई? आपने तो बड़ा ही योगरूढ़ किया है।

उस समय उन्होंने कहा, देखो, मेरे गुरु ने तो ऐसा कहा था कि तू पूर्ण निधि पर पहुँचने के योग्य नहीं परन्तु मुझे तो आज प्रतीत होता है जैसे मैंने अपने गुरु ब्रह्मा के पद को और अपने गुरु के पद को क्या मैंने

तो तीनों लोकों को विजय कर लिया है। उस समय जब बालक को यह अभिमान हो गया तो अन्य ऋषियों के समक्ष पहुँचे।

बेटा! सृष्टु मुनि के समक्ष पहुँचे। सृष्टु मुनि ने कहा, अरे बालक क्या रहा तुम्हारी तपस्या में?

मुनिवरो! उस समय उसने पिता को पिता न जानकर अभिमान में कहा, हे पिता, तूने क्या तपस्या की है आज जो मैंने की है। आज मैंने तीनों लोकों को विजय कर लिया है, तीनों लोकों का स्वामी बन चुका हूँ।

तो मुनिवरो! जब बालक को यह अभिमान छा गया। आगे चलते गये। आदि–आदि ऋषियों से सम्बन्ध किया और सभी ऋषियों से यह अहंकारदायक वाक्य कहा और उन्हें ठुकरा देता था। वह इतना तुच्छ बन गया कि उसका किया हुआ परिश्रम सब समाप्त हो गया। अन्त में बहते हुये वह विभाण्डक ऋषि के द्वार जा पहुँचे। उनसे भी वहीं अहंकारदायक वाक्य कहे। उस समय बेटा! विभाण्डकर ऋषि ने कहा, ''अरे, तुम्हारे गुरु कौन हैं?''

उन्होंने कहा, ''मेरे गुरु शृंग्यादि हैं। मुझे उनकी शिक्षा है''।

उस समय कहा, अरे, तुम्हारे गुरु तो बड़े ब्राह्मण हैं, वह तो सत्यवादी हैं, उनसे यह अहंकारमय वाक्य उच्चारण न कर देना। यदि तुमने उच्चारण किया तो हमें प्रतीत देता है जैसे तुम्हें मृत्युदण्ड प्राप्त हो जाएगा।

उस समय उस बालक ने कहा, अरे नहीं! क्या उच्चारण कर रहे हो? उन्हें अपने पदों से ठुकराने लगे।

अन्त में मुनिवरो! वह स्वयं ब्रह्मणे आत्मा के समक्ष आ पहुँचे उन्होंने प्रश्न किया, ''अरे, कहो बालक! तुम्हारी तपस्या में क्या प्रबलता हुई।''

उस समय कहा, ''मैंने तो तीनों लोकों को विजय कर लिया है। अन्तरिक्ष, द्यौ–लोक, मृत–लोक और अपने गुरु पद को प्राप्त कर लिया है। आप तो यह ही कहते थे कि क्या तपस्या कर पाओगे? भगवन्! मैंने तीनों लोकों को विजय कर लिया है।''

''अच्छा!''

क्या करें बेटा! जब न पता कौन–कौन से कर्मों का जब भोग आता है तो मानव की बुद्धि उसी प्रकार हो जाती है बेटा! उस बालक की यह भावना पाकर और योग द्वारा उसके अन्तःकरण को जान करके कि उस की मृत्यु निकट आ गई है उसी के अनुकूल उन्होंने अपने मुखारबिन्दु से यह कहा कि अरे ऋषि के तुच्छ बालक! तुझे इतना बड़ा अभिमान, जा मृत्यु को प्राप्त हो जा।

उस समय बेटा! वह बालक मृत्यु को प्राप्त हो गया। बेटा! तुम यह प्रश्न करोगे कि क्या परमात्मा के नियम के प्रतिकूल मृत्युदण्ड मिल जाता है? इसका उत्तर यह है कि जब समय आ जाता है तो समय के अनुकूल ही ऐसा वाक्य कहा जाता है।

जब मृत्युदण्ड प्राप्त हो गया तो त्राहिमाम्–त्राहिमाम् मच गई। ऋषियों में हाहाकार मच गया। अरे, यह क्या हुआ? ऋषि का बालक, ऐसा तपस्वी मृत्यु को प्राप्त हो गया। उस समय ब्रह्मा आचार्य ऋषि मण्डल को ले करके क्रोध में छाये हुए वहाँ जा पहुँचे और कहा, ''अरे तुच्छ बालक! तुने एक ऋषि के बालक को नष्ट कर दिया। जब तुम इतने बुद्धिमान थे तो तुमने उसको यथार्थ शिक्षा क्यों न दी? शिक्षा देकर उसको ऊँचे मार्ग पर चलाते, परन्तु तुमने मृत्यु का दण्ड दे दिया। आज तुम्हें भी इन कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। जन्म–जन्मान्तरों की वार्ता तो यह है कि तुम सूक्ष्म शरीर द्वारा जैसे और भी लोक हैं उन सबमें जन्म पाते हुए सतोयुग, त्रेता और द्वापर सभी काल को देखो परन्तु जिस समय कलियुग के 5500 वर्ष व्यतीत हो जाएंगे उस समय तुम्हारा एक अज्ञान गृह में जन्म होगा। वह तुच्छ जन्म हो करके जितनी भी तुम्हारी यह ज्ञान निधि है यह तुम्हारे समक्ष न रहेगी, वह समाप्त हो जाएगी, शरीर में अज्ञानता छा जाएगी। आकृति बहुत ही तुच्छ बन जाएगी परन्तु एक महान अवस्था आ करके जिसको हमारे योगियों ने समाधि अवस्था कहा है, जिसको बहकड़ी वाणी भी कहते हैं, जिसको प्राण अवस्था भी कहते हैं, शरीर की ऐसी गति बन करके उस शरीर से

आत्मा का उत्थान हो करके अन्तरिक्ष मण्डल में जहां सूक्ष्म शरीर वाली महान् आत्माओं के सत्संग के द्वारा, उस शरीर द्वारा तुम्हारी आकाशवाणी मृतमण्डल में पहुंचेगी। वह काल इतना तुच्छ होगा कि उस काल में कोई तुम्हें तुच्छ कहेगा कोई पाखण्डी कहेगा, कोई किसी प्रकार से पुकारेगा, तुम्हें यह कर्म भोगना पड़ेगा।

तो आज मुनिवरो! तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज वह काल है जिस काल में हम लाखों वर्ष पूर्व किये हुए कर्मों को भोग रहे हैं। बेटा! तुम्हें यह ज्ञात हो गया होगा कि वह आज हमारा किया हुआ कर्म है जो बेटा! एक ऋषि बालक को दण्ड देकर मृत्यु को प्राप्त करा के आज हम इस अवस्था को पा रहे हैं।

बेटा! तुम यह प्रश्न करोगे कि महान् आत्मा शाप नहीं देती। गुरु ब्रह्मा ने शाप दिया तो गुरु ब्रह्मा भी महान पाप के भागी बन गए।

मुनिवरो! देखो इसका उत्तर यह है कि मानव का शाप क्या है वह तो कर्मों का वशीभूत होना है और कर्मों में बन्धना है किसी प्रकार बन्ध जाओ। ऐसा वेदों का वाक्य है, ऐसा हमारे आचार्यों ने कहा है। शाप वह देता है जिसकी महान आत्मा होती है परन्तु वह देता किसको है? वह उसके अन्तःकरण को जान लेता है किसी अज्ञानी को शाप देता है तो उस ज्ञानी का आत्मिक बल सूक्ष्म बन जाता है। जो बेटा! ज्ञानी सब कुछ जानता हुआ जिस कार्य को कर देता है उसको अच्छी प्रकार दण्ड देना चाहिए। उसमें कोई हानि नहीं होती, क्योंकि वह तो दण्ड देना है। हमारे गुरुजी ने हमें दण्ड दिया। उस समय गुरुजी ने यह भी कहा था कि उस काल में तुम्हें गुरु भी प्राप्त न होगा। उस समय गुरु से निवेदन किया और कहा, ''भगवन्! हमारा कल्याण कैसे होगा? जब हम अपने सूर्यमण्डलों को त्याग कर मृत–मण्डल में जन्म पाएंगे और जन्म धारण करके हमें कोई योगाभ्यासी अमृती गुरु प्राप्त न होगा तो जीवन कैसे बनेगा?''

उस समय गुरु ने प्रसन्न होकर कहा, ''जाओ! जब तुम्हारे उस शरीर की पचास वर्ष की अवस्था हो जाएगी उस समय तुम्हें **कोई ब्रह्मणी आत्मा** प्राप्त हो जाएगी।''

बेटा! कई समय से तुम्हारा प्रश्न चल रहा था। आज तुम्हें इसका उत्तर मिल गया। आज हम लाखों वर्ष पूर्व किये हुए कर्मों को भोग रहे हैं और भोगते रहेंगे जब तक अवधि है।

यह है बेटा! आजका व्याख्यान। आज के व्याख्यान का अभिप्राय है कि मानव को शुभ कार्य करने चाहिए जिससे मानव ऊँचा बने और मानव का विकास हो।

मुनिवरो देखो! क्या करें हमने तो विचारा भी बहुत परन्तु गुरु का अपमान न सह सके वह उल्टा ही पड़ गया, हमें भोगना पड़ गया। समय की प्रबलता, मानव पर जब समय कठिन आता है तो शुभ कार्य भी अशुभ बन जाता है, उसकी रूपरेखा ही अशुभ बन जाती है। क्या करें बेटा! संसार की गति को। गुरु का अपमान कि गुरु को जीत लिया हम सह न सके और उसको मृत्युदण्ड दे दिया। उसकी उल्टी रूपरेखा बन करके लाखों वर्षों का किया हुआ कर्म आज भोगा जा रहा है। यह परमात्मा की कैसी विचित्रता है जिसमें ऐसे–ऐसे कर्मों में फल भी मानव को भोगने पड़ते हैं।

तो यह आजका आदेश समाप्त हो गया, कल अवसर मिलेगा तो बेटा! कल द्वितीय वाक्य उच्चारण करेंगे। महानन्द जी जैसा तुमने कहा हमें किसी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं कि मृतमण्डल में कोई पाखण्डी उच्चारण कर रहा, कोई कुछ कह रहा है, हमें कोई मन्तव्य नहीं। जब गुरु ने हमें ऐसा जन्म दिया है तो भोगना ही पड़ेगा। उसके अनुकूल परमात्मा से याचना करना हमारा कर्तव्य है हमारे यह व्याख्यान चलते हैं और चलते रहेंगे। परमात्मा की निधि है। आज हम इसको विचारते रहें और इस निधि का इसी प्रकार प्रसार करते रहें जब तक परमात्मा ने हमारे गुरु ने अवधि दी है।

अब हमारा यह आदेश समाप्त हो गया है कल अवसर मिलेगा तो कल दार्शनिक विषय पर व्याख्यान देंगे।

(महानन्द) धन्य हो भगवन्।

तो मुनिवरो! अब हमारा वेद–पाठ प्रारम्भ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्ता समाप्त हो जाएगी। वेद पाठ।

५. एक ही मुख से चार प्रकार की भिन्न–भिन्न वाणी (स्वर ध्वनि) का सुना जाना

आपको यह जानकर बड़ी हैरानी होगी कि ब्रह्मर्षि जी के मुख से हम चार प्रकार की वाणी (स्वर ध्वनि) सुन चुके हैं यह तो आपको ज्ञात हो गया है कि ब्रह्मर्षि जी 49 वर्ष के बाल ब्रह्मचारी हैं। उनकी साधारण और प्रवचन अवस्था की वाणी में अन्तर है, इनके मुख से भिन्न–भिन्न चार वाणी जो हम सुन चुके हैं वह यह हैं—पहली ब्रह्मर्षि जी की साधारण अवस्था की वाणी, दूसरी ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों के समय उनकी विशेष प्रकार की वाणी, तीसरी ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों के समय महानन्द जी की वाणी और चौथी ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों के समय लोमश मुनि की वाणी (पुष्प 5)।

पहली वाणी—ब्रह्मर्षि जी की साधारण अवस्था में बोल–चाल की वाणी है जो वह (ब्रह्मर्षि जी) इस मृतक लोक में आप और हम से बात–चीत करते समय बोलते हैं।

दूसरी वाणी—जब ब्रह्मर्षि जी विशेष अवस्था में प्रवचन करते हैं तो अपने व्याख्यानों में जो उनकी वाणी हुआ करती है वह ज्ञानयुक्त और साधारण अवस्था में भिन्न होती है। इनकी वाणी ऐसे होती हैं जैसे कोई वृद्ध अपनी तेजस्वी वाणी से प्रवचन कर रहा हो।

तीसरी वाणी—प्रवचनों में कभी–कभी एक और प्रकार की वाणी भी सुनी जाती है जो कि ऐसी होती है जैसे नवयुवक बहुत ही तीव्र गति से बोल रहा है यह वाणी ऋषि महानन्द जी की है।

चौथी वाणी—प्रवचनों में एक बार जब कि ब्रह्मर्षि जी महाराज दिनांक 19 अगस्त, 1962 को बी. सी. पार्क, विनय नगर (वेद प्रचार सप्ताह के समय) में "योग द्वारा आत्मा का विश्व भ्रमण" के विषय पर व्याख्यान दे रहे थे तब एक और ही प्रकार की वाणी सुनी गई जो कि बहुत ही तीव्र गति से और जोशीली थी वह वाणी, ऊपर वर्णन की गयी वाणियों से बिल्कुल भिन्न थी। यह वाणी महर्षि लोमश मुनि महाराज की थी।

ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों के शब्द ध्वनि लेखन यन्त्र द्वारा लेखित

वैदिक अनुसन्धान समिति की ओर से 1.1.1962 को ब्रह्मर्षि जी का प्रवचन पहली बार टेपरिकार्ड किया गया। इस समिति के सम्पर्क में आने से पहले ग्रामों में ब्रह्मर्षि जी के जो प्रवचन होते थे उनको टेपरिकार्ड करने का कोई प्रबन्ध नहीं था। समिति की ओर से इनके सैकड़ो प्रवचन रिकार्ड किए जा चुके हैं। यहाँ दो बातों का वर्णन करना अति आवश्यक हैं। पहली यह कि प्रवचनों में बोलने वाली आत्मा की आवाज जो कि ब्रह्मर्षि जी के स्थूल शरीर के मुख से मृतलोक में सुनी जा रही है, चाहे वह ब्रह्मर्षि जी की विशेष अवस्था के अपने व्याख्यानों की हो, चाहे महानन्द जी, लोमश मुनि या कोई और ऋषि की जो ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों के समय देवयान (देवलोक) में अपने प्रवचन दे रहे हों, ज्यों की त्यों टेपरिकार्ड से सुनी जा सकती है। जिन लोगों को ब्रह्मर्षि जी के उन प्रवचनों को सुनने का सौभाग्य नहीं मिल सका या किसी कारण सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकते वह, यह भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रवचन टेपरिकार्ड के द्वारा सुन सकते हैं। दूसरे यह कि पुस्तकें छपवाने के लिए प्रवचनों को लिखना मुश्किल सी बात है और लिखने में भी कुछ गलती हो सकती है। इसलिए टेपरिकार्ड करने के बाद उनको लेखनी में लाया जा सकता है। समिति के पास पांच सौ से अधिक प्रवचन टेपरिकार्ड किए हुए हैं परन्तु अब तक भिन्न–भिन्न विषयों पर केवल 75 पुस्तक ही प्रकाशित हो सकी हैं।

तीसरे यह कि उनके प्रवचनों के टेपरिकार्डों द्वारा वैदिक धर्म के सिद्धान्त, कपोल कल्पित कथाओं की वास्तविक रूपरेखा का प्रचार और आज के जनसाधारण की भ्रांतियां जिनके कारण वह नास्तिकता की ओर जा रहे हैं, को दूर किया जा सकता है।

यदि कोई सज्जन यह टेप लेना चाहें तो मूल्य देकर ले सकता है। इसका मूल्य प्रति टेप तीस रुपये है।

महानन्द जी कौन हैं?

जिला मेरठ में बरनावा ग्राम वही पुराना ऐतिहासिक स्थान है जोकि महाभारत काल में "वारणावत" के नाम से जाना जाता था। जहां कौरवों ने पाण्डवों को जीवित जलाने के उद्देश्य से लाक्षागृह बनाया था। हमें

बरनावा के निवासियों से यह ज्ञात हुआ कि ब्रह्मर्षि जी अपने पिता के द्वारा मार–पीट, कठोर और निष्ठुर व्यवहार पाकर ग्राम खुर्रमपुर सलीमाबाद में अपने घर को त्यागकर निकले, वह फिरते–फिराते बरनावा पहुँचे और धर्मवीर त्यागी के यहां ठहरे। इस गाँव में चार–पांच महीने रहने के बाद एक दिन सायंकाल के समय ब्रह्मर्षि जी कुछ साथियों के साथ लाक्षागृह टीला पर गए और वहां से वापिस आकर रात्रि को उनका एक व्याख्यान हुआ। लोग ऐसा कहते हैं कि जब उनका वह व्याख्यान हो रहा था तो उसमें कुछ समय के लिए शैली और स्वर (आवाज–टवपबम) में परिवर्तन आ गया था और ऐसा लगता था कि जैसे वहां कोई दूसरा व्यक्ति बोल रहा है और व्याख्यान के विषय पर प्रश्न कर रहा था। इस व्यक्ति को ब्रह्मर्षि जी ने अपनी व्याख्यान अवस्था में 'महानन्द' नाम से सम्बोन्धित किया। उसी समय से यह "महानन्द" व्याख्यानों में उस व्यक्तित्व, जिसके द्वारा यह प्रवचन होते हैं, शिष्य रूप में प्रायः प्रश्नोत्तर करते रहते हैं। महानन्द जी के द्वारा जो प्रश्न किए जाते हैं वह बहुत ही विषयानुकूल एवम् सारगर्भित होते हैं और उन प्रश्नों का उत्तर भी ब्रह्मर्षि जी द्वारा जबकि वह अपनी अवस्था विशेष में होते हैं उतनी ही प्रवीणता एवम् पूर्णता के साथ दिया जाता है। महानन्द जी की आत्मा, ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी की आत्मा को प्रवचनों के समय "पूज्यपाद गुरुजी" कहकर सम्बोधित करती है। ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों में कई बार ऐसा आया है कि महानन्द उनके (शृङ्गी ऋषि) शिष्य थे, लाखों वर्षों से उन्होंने जन्म नहीं लिया और त्रेता, द्वापर और अब कलियुग में उनकी आत्मा अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रही। वह देवयान की आत्मा है।

लोमश मुनि कौन हैं?

ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों से यह जान पड़ता है कि वे उनके (शृङ्गी ऋषि) शिष्य थे और सतयुग, त्रेता, द्वापर काल में वे भी उसी समय हुए जब शृङ्गी ऋषि हुए। महर्षि लोमश मुनि जी का व्याख्यान जो कि विशेष अवस्था में ब्रह्मर्षि जी के मुखारबिन्द से प्रसारित है से ऐसा ज्ञात हुआ है कि उन्होंने राम और कृष्ण के समय इस पुण्य भूमि पर जन्म लिया। अब लोमश मुनी जी की आत्मा 'देवयान की आत्मा' है इनके व्याख्यान में से कुछ अंश इस पुस्तक में दिये गए हैं।

द्वितीय खण्ड

६. कुछ आवश्यक प्रश्न और उनके उत्तर

प्रश्न—ब्रह्मर्षि जी के प्रवचन आकाश–मण्डल से पृथ्वी मण्डल तक कैसे आ जाते हैं?

जब ब्रह्मर्षि जी चारपाई अथवा तख्त पर पीठ के बल चित्त लेट जाते हैं, लगभग 15 मिनट के बाद उनकी समाधि लग जाती है और उनका सिर दाएं–बाएं हिलना (कम्पन/हरकत) प्रारम्भ हो जाता है। इनके हाथ छाती के ऊपर आकर जुड़ जाते हैं और वेदमन्त्रों का उच्चारण लगभग दस मिनट तक करते हैं। इसके बाद उनका हिन्दी में व्याख्यान प्रारम्भ हो जाता है और व्याख्यान की समाप्ति के बाद फिर लगभग 2 मिनट वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं। यह क्रम हम आरम्भ से ही देखते आ रहे हैं।

अपने प्रवचनों में 'देखो मुनिवरो' 'हे ऋषिमण्डल मेरे प्यारे, बेटा इत्यादि शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि यह प्रवचन इस मृत्युलोक में नहीं हो रहे। उनके प्रवचन देवयान (देवलोक) में होते हैं और इनके भौतिक शरीर (स्थूल शरीर) के मुखारविन्द से इस मृत्युलोक में सुने जाते हैं। ऐसा इनके प्रवचनों में बहुत जगह आता है। इस बारे में स्व. श्री देवप्रकाश जी शर्मा, संयोजक वैदिक अनुसन्धान समिति, नई दिल्ली ने फरवरी 1965 में लिखा कि "अपने प्रवचनों में ब्रह्मर्षि जी ने बताया है कि यह उनकी आकाशवाणी इसी प्रकार होती है जैसे कि भौतिकता में यन्त्र द्वारा वाणी का वायुमण्डल में प्रसार कर दिया जाता है और यन्त्र से सम्बन्धित यन्त्र उस वाणी को वायुमण्डल से लेकर प्रसारित कर देता है इसी प्रकार आध्यात्मिकता में, उनकी यौगिकता (समाधि) में आत्मा का उत्थान होकर अन्तरिक्ष में सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से सत्संग होता है और आत्मा का तारतम्य इस शरीर से रहता है और उस सत्संग की वाणी का प्रसार इस शरीर से होने लगता है और शरीर उस समय एक यन्त्र बना होता है।"

इसके बारे में ब्रह्मर्षि जी ने दिनाँक 19 जुलाई, 1964 नई दिल्ली में 'योग मुद्रा' के विषय पर प्रवचन करते हुए बताया (उनके इस प्रवचन से कुछ अंश)–"देखो मुनिवरो! अभी–अभी हमारा पर्ययण (वेद पाठ) समय समाप्त हुआ, आज हम तुम्हारे समक्ष पुनः की भांति कुछ वेदमन्त्रों का गान गा रहे थे, आज यह विद्वत मण्डल है और सभी कुछ जानता है कि आज के वेदमन्त्रों में संक्षेप रूप से क्या था?

यह वेद वह अमूल्य बीज है, वह अमूल्य बिन्दु है जिसमें इस संसार का ज्ञान और विज्ञान है, जिस बिन्दु को जानकर हम इस संसार के ज्ञान और विज्ञान को जानने वाले बन जाते हैं। इसको जानना हमारे लिए अनिवार्य है। जिस प्रकार मानव नित्यप्रति प्रातःकाल से अपने आसन को त्यागता है और नाना प्रकार की क्रियाओं के पश्चात् शारीरिक रक्षा के लिए उसका भोजन अनिवार्य है इसी प्रकार आत्मा को सुविधा देने के लिए, आत्मिक बल को प्रबल बनाने के लिए हमें परमात्मा की याचना करना भी अनिवार्य है।.....परमात्मा क्या बिन्दु है जो हमारे नेत्रों के समक्ष नहीं है? मैंने इसका उत्तरदायी बनते हुए कई काल में कहा है कि परमात्मा वह बिन्दु है जो इन सब बिन्दुओं को चला रहा है, सब लोक–लोकान्तरों को चला रहा है, वह एक महान चैतन्य ज्ञान स्वरूप है, संसार को एक महान् कम्पन दे रहा है, वह कम्पन प्राणों के द्वारा है या अपनी अलौकिक क्रिया के द्वारा है, प्रत्येक लोक–लोकान्तर पृथ्वी मण्डल में, सबमें कम्पन (हरकत) है। मानव के द्वारा भी कम्पन है। उस कम्पन से यह संसार और लोक–लोकान्तर चल रहा है।.....मुनिवरों देखो! हमारे शरीर में पांच प्राण कार्य कर रहे हैं, एक प्राण है जो आता है और जाता है, वह तत्व वायु से लेता है और महान् क्लिष्ट वायु को रमण करा देता है। इसी प्रकार अपान है जो कितने अशुद्ध मांस स्थल पर रहता है, यदि प्राण की दृष्टि से आज प्राण अपना कार्य न करे तो मनुष्य की क्या गति होती है। भिन्न–भिन्न कर्त्तव्य हैं इनके। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ये पांच प्राण हैं।

जब मनुष्य निद्रा की गोद में चला जाता है उस काल में पांचों प्राण अपने–अपने स्थान पर उद्यत रहते हैं और मानव की रक्षा करते हैं, उस महान् जीव आत्मा के आसन की रक्षा करते हैं। जब प्राण रक्षा करते हैं तो यह जीव आत्मा कहां जाता है?......तो मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! आज मैं कुछ योग मुद्रा उच्चारण करने जा रहा हूं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत पूर्व काल में प्रश्न किया था जिसका कल भी उत्तर दिया, आज भी इसका संक्षेप में उत्तर देता चला जाऊं। इन्होंने कहा था कि हमारी यह अमूल्य आकाशवाणी आपके अमूल्य शरीर में जाती है तो वहां कण्ठ से ऊपर के भाग में कम्पन होता है। इसका क्या कारण है? यह विषय कुछ दूरी (महान् और गूढ़) है और यह स्थिति कुछ न उच्चारण करने योग्य है। परन्तु चलो संक्षेप से इसका उत्तर दे रहा हूँ।

मुनिवरो! जैसा मैंने प्रमाण दिया था कि निद्रा अवस्था में आत्मा–परमात्मा से मिलन करता है और यह प्राण उसी प्रकार रक्षा करने वाले रहते हैं, जैसे जब गृह का स्वामी किसी अन्य स्थान में रमण करता है तो उसके सेवकों को आज्ञा मिली होती है कि इस गृह की सुरक्षा करना यदि सेवक योग्य है तो गृह की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र के सेवकों को राष्ट्रनायक की आज्ञा मिली हुई होती है कि जिस प्रजा का मैं स्वामी हूँ उस प्रजा को तुम सुविधा दो और उसकी रक्षा करो। इसी प्रकार निद्रा अवस्था में जब आत्मा परमात्मा, सविता देव से मिलान करती है तो उस समय यह प्राण रक्षा करते हैं।

मुनिवरो! इसी प्रकार जब यह आत्मा शरीर से पृथक होता है और बेटा' तुम जैसी आत्माओं से पुनः की भांति इस आत्मा (ब्रह्मर्षि जी की) का मिलान होता है तो वह जो प्राण रक्षक हैं उनका संचार पूर्व जन्मों का क्या इस शरीरम् भवते जो अभ्यास हमने किसी काल में किया उस अभ्यास का आक्रमण जो अनुपम मुद्रा है। उन पांच प्राणों का आघात सूक्ष्म प्रादुर्भूत्त है। उनका सम्बन्ध कण्ठ के ऊपर के भाग में ब्रह्मरन्ध्र से लेकर घ्राण के निचले विभाग 'कण्ठम भवति' तक रहता है।

इसलिए बेटा! यह कण्ठ से ऊपर के भाग की कम्पन ;डवजपवद. हरकत) होती है। अब यह कम्पन क्यों होती है? यह इसलिए होती है क्योंकि हमारा यह अभाग्य' समय है।

मुनिवरो! देखो, इसका उत्तर यह है कि योग 'योगश्चति विध्यम् भवते कामाः' जब योगी इस स्थिति को प्राप्त हो जाता है जो मैंने अभी–अभी वर्णन की अर्थात् जिनका सम्बन्ध आत्माओं से मिलान करने का हो जाता है। उनका कोई न कोई हृदयस्थल जो प्राणरक्षा कर रहे हैं उनका भी कुछ सूक्ष्म भूत है, सूक्ष्म तत्व है

जिसका सम्बन्ध तन्मात्राओं से है। उन सूक्ष्म प्राणों की तन्मात्रा द्वारा गोष्ठी होती है। तन्मात्राओं का सम्बन्ध मस्तिष्क से, ब्रह्मरन्ध्र से रहता है और ब्रह्मरन्ध्र यह महापंच तत्व जिनको पंचतन्मात्राएं कहते हैं इनका सम्बन्ध मेधावी और प्रज्ञा बुद्धि दोनों का जब मिलान होता है तो आत्मा का सम्बन्ध उन महान् आत्माओं से हो जाता है। यह जो महान् प्रणस्पति आत्मा है इसका मिलान वहाँ और वह जो शरीर कम्पन है यह बेटा! उस पूर्व 'अघ्राण अस्पति' यह जो उसका अनुभव है; उन ऋषियों की जो चर्चाएं आती हैं उनके जैसे हमारे विचार हैं और इनका तारतम्य उस शरीर से होता है वह तारतम्य प्राणों के सहित होता है और महान् प्राणों के सहित हो करके वाक्य अपना कार्य करता है और प्राणों का जो आघात है उनसे देखो उनका एक 'वृन्तति यजः तनः धृते'—प्राणों से उनका तारतम्य हो करके बेटा! ब्रह्मरन्ध्र की एक अनुपम गति हो जाती है और गति हो जाने के कारण वह इस प्रकार की अनुपम क्रिया है।

आज यदि हमें इस स्थिति को पान करना है तो बेटा! बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ब्रह्मरन्ध्र में इस आत्मा को रमण कराने को **'विरधति'** कहा है।

मुनिवरो! रही यह चर्चाएं कि यह महान् श्वांस भी आता है तो श्वांस तो प्राण के कारण आता है। प्राणों का तारतम्य आत्मा के साथ रहता है जैसा मैंने अभी—अभी कहा है।

बेटा! तुमने सुना होगा जब द्वापर काल में धृतराष्ट्र ने संजय से कहा था कि हे संजय! आज मेरे पुत्र और पाण्डव पुत्र कुरुक्षेत्र में संग्राम की स्थिति में हैं मुझे उसका वर्णन कराते चले जाओ, मैं उसको नेत्रों से नहीं देख सकता। मुनिवरो! वह क्या था? पूर्व काल में उसकी ''स्वाधिविद्यानम् मम् वन्चते वर्णोति वज्ता भवति कच्ताः'' उसको चित्रावली विद्यानम् यन्त्र कहते थे। उस यन्त्र का जब तारतम्य कुरुक्षेत्र से मिलान करा दिया तो उस तारतम्य के द्वारा उन चित्रों का अनुकरण किया जा रहा है। उनकी वाणी भी है, तारतम्य के द्वारा जहाँ जो कुछ होता था संजय महाराज धृतराष्ट्र को सब वर्णन कर दिया करते थे।

मेरे प्यारे महानन्द जी का कथन है कि संजय को भगवान कृष्ण ने दिव्य नेत्र दिये। परन्तु कदापि नहीं, वे दिव्य नेत्र नहीं थे परन्तु प्रकृति से जाना हुआ एक यन्त्र था जो भौतिक विज्ञान से जाना जाता है।''

गुरुजी! आधुनिक' काल में उसको और कुछ कहते हैं, वास्तव में उसका इतना तारतम्य तो नहीं हुआ जितना आप उच्चारण कर रहे हैं। इन यन्त्रों का कुछ विकास तो किया है और अभी तक चल रहा है—पूर्व रूप से नहीं।

चलो बेटा! आधुनिक काल में उस यन्त्र को कुछ भी कहते हों परन्तु पूर्वकाल में जो कहते थे वह मैंने वर्णन किया। मुझे इसका प्रमाण देने की क्या आवश्यकता थी? इसका नाम है भौतिक विज्ञान और यह है आध्यात्मिक विज्ञान जो वर्णन कर रहे थे। आत्मा की आन्तरिक वृत्ति है, उसका जो मनोहर तारतम्य है वह किसी भी आत्मा से मिलान हो सकता है। उसका तारतम्य यहाँ भी है और वहां भी है। जहां उन विचारों वाला यन्त्र होता है वहां वह यन्त्र उनको धारण कर लेता है।

मुनिवरो! जैसा हमने वायुमण्डल में एक वाणी का प्रसार किया कि अरे अमुक व्यक्ति उस वाणी से बोल पड़ता है क्योंकि वह उसका तारतम्य है, वह उस वाणी का सूचक है, उसी के द्वारा उसका प्रसारण हो जाता है। जैसे आज मैंने प्यारे महानन्द जी को कहा कि अरे महानन्द! तो देखो, महानन्द जी वाणी से कुछ कहेंगे। क्यों? क्योंकि मेरी वाणी का मेरे हृदय का जो तारतम्य है वह महानन्द जी से है मेरा जो वाक्य है वह महानन्द जी का सूचक है परन्तु मैंने उस वाणी को वायुमण्डल में प्रसारित किया और जहां उस वाणी वाला विराजमान है उससे वाणी का तारतम्य मिलता है और उसी तारतम्य से वह मनुष्य कहता है हां भगवन्! जो आज्ञा हो। तो मुनिवरो यह क्या है?

इसी प्रकार हमारी आत्मा का जो तारतम्य है वह उन सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से मिलान होता है और मिलान होकर शरीर की कम्पन जो अभी वर्णन की है, वह अनिवार्य है क्योंकि उस श्रुत में कोई न कोई अग्रणी होता है और अग्रणी होने के नाते उन पर प्राणों का सन्चालन होने लगता है, सन्चालन होने के नाते वह सब कम्पन स्वभाविक हो जाती है।

बेटा! यह एक बड़ा महान् और गम्भीर विषय है, साधारण बुद्धि का विषय नहीं। यह नहीं कि आज कोई मानव किसी वेदी पर विराजमान होने वाला, व्याख्यान देने वाला योग मुद्रा का या इस स्थिति का वर्णन करता चला जाये। इसको गम्भीरता पूर्वक जानने की आवश्यकता है, यह वेदी पर उच्चारण करने का विषय नहीं, अनुभव का, विचार विनिमय का विषय है। विचार–विनिमय भी वही कर सकता है जिसको योग पर अटूट श्रद्धा होती है। जैसे भौतिक विज्ञान वाले को अपने भौतिक विज्ञान पर अटूट श्रद्धा होती है इसी प्रकार आध्यात्मिक विज्ञान जानने वाले को इस विज्ञान पर अटूट श्रद्धा होनी चाहिए तभी इस विज्ञान को जान सकता है।

आज कोई साधारण मनुष्य यह उच्चारण करने लगे कि भाई योग मुद्रा का वर्णन करो उसका क्या अनुभव है तो यह वाणी का विषय नहीं यह तो केवल आनन्द का विषय है। जिस प्रकार निद्रावस्था में मानव की आत्मा का जो तारतम्य है वह उस परमात्मा से लग जाता है केवल जड़ तुल्य रह जाते हैं क्या? यह प्राण असुत रह जाते हैं जो रक्षक हैं। कोई मानव यह कहे कि निद्रा का आनन्द कैसे है तो वह मानव कहेगा कि मुझे निद्रा आई कोई नहीं रहा। **यह नहीं उच्चारण कर सकता कि उसका कैसा आनन्द होता है।** केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संक्षेप में प्राप्त होता है कि जब हम निद्रावस्था से निवृत्त होते हैं तो उस समय हमें एक महान जीवन प्राप्त होता है जिसको महा आनन्द कहते हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! यह है आज का हमारा वाक्य, आदेश। मुझे अधिक परिमाण से आदेश नहीं प्रगट करना है। केवल संक्षेप से देना है क्योंकि आज मैंने वेद पाठ अधिक किया है, वेद पाठ में बड़ा आनन्द आ रहा था, हृदय उससे पुलकित हो रहा था, कि आज मैं वेद का पाठ ही करता रहूं परन्तु क्या करूं ''भवति कामाः वेतु हिरण्यगर्भः सम्राजन्नोति कामाः देवम् भवति वेतुस्ना।''

मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! आज मेरा कोई योग का विषय नहीं था वेद' में ही योग का विषय था परन्तु संक्षेप में कुछ था, यदि मुझे समय मिलेगा और वेद पाठ में योग का विषय आयेगा तो बेटा! मैं इसको और अच्छी प्रकार वर्णन कर सकूंगा। महर्षि पांतजली जी ने योग के विषय में बहुत कुछ कहा है और महत्त्वपूर्ण वाक्य यह कि 'चित्तवृत्ति निरोध योगः' देखो चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करना ही योग कहलाता है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि योग की दशा में चित्त की वृत्तियों को एकाग्र किसी भी प्रयत्न से किया जाए परन्तु करना चाहिये। वह ज्ञान से, विज्ञान से करो किसी भी प्रकार करो; चित्त की एकाग्रता करना ही एक अनुपम योग है। इन्द्रियों का सम्बन्ध मन से होता है। मन का चित्त से होता है तो चित्त एक विशाल स्वरूप धारण कर लेता है। अब इसके आगे चलकर इसकी श्रेणियों बनती हैं—माधुक श्रेणी, अनूक, चक्षश्णी, मनइन्चति श्रेणी और नाना श्रेणियां, जैसे ब्रह्म श्रेणी रोगोणी श्रेणी, अधिनायक श्रेणी और जिसको देखो ब्रह्मरन्ध्र श्रेणी कहते हैं। चित्त के विस्तार से कई प्रकार की श्रेणियां होती है। बेटा, किसी काल में योग का विषय आयेगा तो मैं इसको अच्छी प्रकार वर्णन कर सकूँगा। आज का विषय तो केवल कंपन के सम्बन्ध में था.........आज का हमारा यह आदेश अब समाप्त होने जा रहा है। आज का हमारा आदेश बहुत सूक्ष्म था। प्रारम्भ के वाक्यों में आदेश चल रहा था कि हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये जैसे वायु वेग से रमण कर रही है, वृक्ष में उससे कम्पन भी आती है परन्तु स्थिर है, अपनी छाया को नहीं त्यागता। उसी प्रकार जो ऊँचे पुरुष होते हैं वह इस संसार में वायु रूपी विचारों से विचलित नहीं होते, विचार रूपी वायु मानव को विचलित कर देती है, आज उस वायु से विचलित न बनो, यदि तुम विचलित बन गये तो जीवन समाप्त हो जायेगा, इसलिये एक होना जानो, संसार में मिलकर कार्य करो, एक वृत्ति बनाकर कार्य करो। यदि तुम्हें मौलिकता और आध्यात्मिकता दोनों से ऊँचा बनना है तो सब प्रकार से प्रगतिशील बनना हैं प्रगतिशील बन कर जीवन को शिरोमणि बनाना है, सर्वोपरि पवित्र बनाना है।

धन्य हो भगवन्!' गुरुजी आजका आदेश तो बड़ा शिरोमणि और प्रिय लगा परन्तु समय सूक्ष्म।

हास्य..........यह तो बेटा! तुम्हारा नित्यप्रति उच्चारण करने का एक अभ्यास हो चुका है। जैसे माता का प्रिय बालक अपनी माता को मनाने के लिए एक वाक्य को बारम्बार कहा करता है यही दशा तुम्हारी बन चुकी है बेटा!

हास्य........भगवन् गुरुओ के द्वारा बननी भी चाहिये। गुरुओं के द्वारा यह वृत्ति नहीं बनेगी तो आज यह जीवन किसी काल में भी ऊंचा न बनेगा भगवन्!

अच्छा! धन्य वेतु शान्तम्!

तो मुनिवरो! अब यह आदेश समाप्त हो गया है। आज हम अपने कर्त्तव्य के विषय में उच्चारण कर रहे थे। जिस प्रकार हम किये हुए कर्मों के फल भोगने में अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं इसी प्रकार प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या और प्रत्येक ऋषि मण्डल को, राजा–महाराजा को अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। जिस काल में ऐसा होता है वह स्वर्ग कहलाता है, उसको सतोयुग कहते हैं, महानता और विचित्रता कहते हैं। यह आज का हमारा आदेश समाप्त हो चुका है अब वेद पाठ होगा इसके पश्चात् वार्ता–समाप्त।

| वेद पाठ |

७. ब्रह्मर्षि जी को महाभारत काल के पीछे का ज्ञान क्यों नहीं?

प्रश्न—महानन्द जी कौन हैं?

ब्रह्मर्षि जी को प्रवचनों के समय यह कहते कई बार सुना गया है कि उन्हें सतयुग से लेकर महाभारत काल तक का ज्ञान है परन्तु उसके बाद का नहीं। एक प्रवचन के समय अपने शिष्य ऋषि महानन्द जी से यह कहते सुना गया कि बेटा महानन्द! मुझे महाभारत काल के बाद का बोध कराओ।' कभी कभी पूज्य महानन्द जी स्वयं ही ब्रह्मर्षि जी से प्रश्न कर देते हैं कि गुरुजी! जब मैं अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहा था तो मैंने मृतलोक में ऐसा देखा और उसके समाधान के बारे में अपना आदेश देने की प्रार्थना किया करते हैं।

ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों से ऐसा ज्ञात हो चुका है कि महानन्द जी एक ऋषि और योगी थे जो कि सतयुग में इनके शिष्य थे जिन्होंने लाखों वर्षों से जन्म धारण नहीं किया। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में महानन्द जी की आत्मा अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रही है। महानन्द जी महाभारत काल के बाद की जानकारी समय–समय पर अपने गुरु को कराते रहते हैं।

प्रश्न यह है कि ब्रह्मर्षि जी को प्रवचनों के समय जब सतयुग, त्रेता, द्वापर में महाभारत काल तक का ज्ञान है तो आगे का क्यों नहीं? यह तो तभी स्पष्ट होगा कि जब कभी महानन्द जी प्रवचनों के समय ब्रह्मर्षि जी से एक प्रश्न कर दें या स्वयं बताएं। मगर मेरी तुच्छ बुद्धि में इसका एक कारण आ रहा है जो कि वर्णन किए देता हूँ।

परमपिता परमात्मा इस संसार में ओत–प्रोत है, लोक–लोकान्तरों को उत्पन्न करता है। पृथ्वी मण्डल हैं, पृथ्वी मण्डल के ऊपर बुद्ध मण्डल है—बुद्ध मंडल के ऊपर मंगल है मंगल के ऊपर अनेक चक्षाणि आदि लोक हैं। इस विशाल विश्व में नाना सूर्य मण्डल हैं, नाना चन्द्र मण्डल हैं, अगस्त मण्डल, विशिष्ट मण्डल, अरूण मण्डल और नाना मण्डल, ध्रुव लोक, बृहस्पति लोक, अचंग लोक, भूः, भुवः स्वः आदि लोक–लोकान्तर परमात्मा के रचे हुए हैं।

परमात्मा जन्म धारण कभी नहीं करता। यदि परमात्मा जन्म धारण कर ले तो वह सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकर, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनन्त, अजर, अमर अभय, नित्य, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी नहीं रह सकता क्योंकि जीव आत्मा में यह सब गुण नहीं होते।

आत्मा भी कभी परमात्मा नहीं बनता। अपने कर्मानुसार वह जन्म लेता रहता हैं निकृष्ट कर्म करने पर वह पशु–पक्षी और कीट–कीटाणु बनता है, उत्तम कर्म करने पर मनुष्य योनि प्राप्त होती है। और इससे उत्तम कर्म करने से सूक्ष्म शरीर के साथ देवयान (देवलोक) में विचरता है और अति उत्तम कर्म करने के बाद वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

पूज्य पण्डित मदन मोहन जी 'विद्यासागर' (हैदराबाद निवासी) ने अपनी पुस्तक 'मुक्ति और उसके साधन'' में इस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से वेद और शास्त्रों के आधार पर सिद्ध किया है कि ''शोकरहित विशेका आदि सिद्धियों से भी विरक्त हो के सब क्लेशों और दुःखों के बीज (क्षेत्र) अविद्या के नाश करने के लिए यथावत् प्रयत्न करें क्योंकि उसका नाश किए बिना मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता'' और ''जब दोषों (क्लेशों, मलों) से अलग हो के विद्या–ज्ञान की ओर आत्मा झुकती है तब कैवल्य मोक्ष धर्म के संस्कारों से उसका चित्त परिपूर्ण हो जाता है और तभी जीव को मोक्ष प्राप्त होता है। क्योंकि जब तक अविधा के कारण बन्धन के कर्मों में जीव फंस जाता है या फंस रहा है, तब उसको मुक्ति प्राप्त होना असम्भव है (ऋ. भू. 446द्ध और ''वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्धज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्त जीवों के साथ मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से देखता हुआ लोक–लोकान्तरों में घूमता है। वह सब पदार्थों का जो उसके ज्ञान में आती हैं देखता है। उसका जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। निर्मल होने से पूर्ण (बहुत) ज्ञानी होने से मुक्ति में जीवात्मा को सब सन्निहित पदार्थों का भाव यथावत् होता है।'' (सत्यार्थ प्रकाश समु. 9 पृ. 333द्ध और ''मुक्ति में जीवात्मा ब्रह्म में लय नहीं होता वह पृथक विद्यमान रहता है'' (ऋ. भू. 315द्ध तो यह स्पष्ट है कि मोक्ष प्राप्त करने तक आत्मा शरीर धारण करता रहता है। इतना ही नहीं मोक्ष की अवधि' पूरी होने पर फिर ''मोक्ष आत्मा'' शरीर धारण करके इस संसार में आता है। अब प्रश्न यह है कि आत्मा जन्म (शरीर) कहां धारण करता है; जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ कि प्रभु के रचे हुये नाना लोक–लोकान्तर हैं। अपने कर्मों के अनुसार आत्मा इन लोक–लोकान्तरों में कहाँ और कौन सी योनि में जन्म लेता है यह तो परमपिता परमात्मा ही जानता है। यह विषय तो योग का है और महायोगी ही ठीक निर्णय दे सकता है।

ब्रह्मर्षि जी ने कर्मों की गति पर व्याख्यान देते हुए बताया कि उनके गुरु ब्रह्मा जी ने इन्हें दण्ड देते हुए कहा कि–'''उस काल में तुम्हें गुरु भी प्राप्त न होगा।'' उस समय गुरु से निवेदन किया और कहा, ''भगवान्! हमारा कल्याण कैसे होगा? जब हम अपने सूर्यमण्डल का त्यागकर मृतमण्डल में जन्म पायेंगे और जन्म धारण करके हमें महान् योगाभ्यासी अमृत गुरु प्राप्त न होगा तो जीवन कैसे बनेगा।'' तो उस समय गुरु ने प्रसन्न होकर कहा, ''जाओ! जब तुम्हारे उस शरीर की पचास वर्ष की अवस्था हो जाएगी उस समय तुम्हें कोई ब्रह्मणी आत्मा प्राप्त हो जाएगी।''

इससे ज्ञात होता है शृङ्गी ऋषि की आत्मा ने महाभारत काल के बाद इस पृथ्वी मण्डल पर अब जन्म लिया है। महाभारत काल के बाद उनकी आत्मा (उनके गुरु ब्रह्मा के शाप के कारण और परमात्मा के नियमानुसार) दूसरे लोकों या मण्डल में जन्म लेती रही। अब कलियुग में उनकी आत्मा सूर्यमण्डल आदि में जन्म लेती और शरीर त्यागती हुई इस मृतलोक में आ पहुंची है। महाभारत काल से अब तक इस मृतलोक में जन्म न लेने के कारण उस समय का ज्ञान नहीं है।

८. ब्रह्मर्षि जी को महाभारत काल के पीछे का ज्ञान क्यों नहीं?

प्रश्न–महानन्द जी कौन हैं?

ब्रह्मर्षि जी को प्रवचनों के समय यह कहते कई बार सुना गया है कि उन्हें सतयुग से लेकर महाभारत काल तक का ज्ञान है परन्तु उसके बाद का नहीं। एक प्रवचन के समय अपने शिष्य ऋषि महानन्द जी से यह कहते सुना गया कि बेटा महानन्द! मुझे महाभारत काल के बाद का बोध कराओ।' कभी कभी पूज्य महानन्द जी स्वयं ही ब्रह्मर्षि जी से प्रश्न कर देते हैं कि गुरुजी! जब मैं अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहा था तो मैंने मृतलोक में ऐसा देखा और उसके समाधान के बारे में अपना आदेश देने की प्रार्थना किया करते हैं।

ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों से ऐसा ज्ञात हो चुका है कि महानन्द जी एक ऋषि और योगी थे जो कि सतयुग में इनके शिष्य थे जिन्होंने लाखों वर्षों से जन्म धारण नहीं किया। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में महानन्द जी की आत्मा अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रही है। महानन्द जी महाभारत काल के बाद की जानकारी समय–समय पर अपने गुरु को कराते रहते हैं।

प्रश्न यह है कि ब्रह्मर्षि जी को प्रवचनों के समय जब सतयुग, त्रेता, द्वापर में महाभारत काल तक का ज्ञान है तो आगे का क्यों नहीं? यह तो तभी स्पष्ट होगा कि जब कभी महानन्द जी प्रवचनों के समय ब्रह्मर्षि जी से एक प्रश्न कर दें या स्वयं बताएं। मगर मेरी तुच्छ बुद्धि में इसका एक कारण आ रहा है जो कि वर्णन किए देता हूँ।

परमपिता परमात्मा इस संसार में ओत–प्रोत है, लोक–लोकान्तरों को उत्पन्न करता है। पृथ्वी मण्डल हैं, पृथ्वी मण्डल के ऊपर बुद्ध मण्डल है—बुद्ध मंडल के ऊपर मंगल है मंगल के ऊपर अनेक चक्षाणि आदि लोक हैं। इस विशाल विश्व में नाना सूर्य मण्डल हैं, नाना चन्द्र मण्डल हैं, अगस्त मण्डल, विशिष्ट मण्डल, अरूण मण्डल और नाना मण्डल, ध्रुव लोक, बृहस्पति लोक, अचंग लोक, भूः, भुवः स्वः आदि लोक–लोकान्तर परमात्मा के रचे हुए हैं।

परमात्मा जन्म धारण कभी नहीं करता। यदि परमात्मा जन्म धारण कर ले तो वह सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकर, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनन्त, अजर, अमर अभय, नित्य, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी नहीं रह सकता क्योंकि जीव आत्मा में यह सब गुण नहीं होते।

आत्मा भी कभी परमात्मा नहीं बनता। अपने कर्मानुसार वह जन्म लेता रहता हैं निकृष्ट कर्म करने पर वह पशु–पक्षी और कीट–कीटाणु बनता है, उत्तम कर्म करने पर मनुष्य योनि प्राप्त होती है। और इससे उत्तम कर्म करने से सूक्ष्म शरीर के साथ देवयान (देवलोक) में विचरता है और अति उत्तम कर्म करने के बाद वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

पूज्य पण्डित मदन मोहन जी 'विद्यासागर' (हैदराबाद निवासी) ने अपनी पुस्तक 'मुक्ति और उसके साधन'' में इस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से वेद और शास्त्रों के आधार पर सिद्ध किया है कि ''शोकरहित विशेका आदि सिद्धियों से भी विरक्त हो के सब क्लेशों और दुःखों के बीज (क्षेत्र) अविद्या के नाश करने के लिए यथावत् प्रयत्न करें क्योंकि उसका नाश किए बिना मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता'' और ''जब दोषों (क्लेशों, मलों) से अलग हो के विद्या–ज्ञान की ओर आत्मा झुकती है तब कैवल्य मोक्ष धर्म के संस्कारों से उसका चित्त परिपूर्ण हो जाता है और तभी जीव को मोक्ष प्राप्त होता है। क्योंकि जब तक अविधा के कारण बन्धन के कर्मों में जीव फंस जाता है या फंस रहा है, तब उसको मुक्ति प्राप्त होना असम्भव है (ऋ. भू. 446द्ध और ''वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्धज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्त जीवों के साथ मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से देखता हुआ लोक–लोकान्तरों में घूमता है। वह सब पदार्थों का जो उसके ज्ञान में आती हैं देखता है। उसका जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। निर्मल होने से पूर्ण (बहुत) ज्ञानी होने से मुक्ति में जीवात्मा को सब सन्निहित पदार्थों का भाव यथावत् होता है।'' (सत्यार्थ प्रकाश समु. 9 पृ. 333द्ध और ''मुक्ति में जीवात्मा ब्रह्म में लय नहीं होता वह पृथक विद्यमान रहता है'' (ऋ. भू. 315द्ध तो यह स्पष्ट है कि मोक्ष प्राप्त करने तक आत्मा शरीर धारण करता रहता है। इतना ही नहीं मोक्ष की अवधि' पूरी होने पर फिर ''मोक्ष आत्मा'' शरीर धारण करके इस संसार में आता है। अब प्रश्न यह है कि आत्मा जन्म (शरीर) कहां धारण करता है; जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ कि प्रभु के रचे हुये नाना लोक–लोकान्तर हैं। अपने कर्मों के अनुसार आत्मा इन लोक–लोकान्तरों में कहाँ और कौन सी योनि में जन्म लेता है यह तो परमपिता परमात्मा ही जानता है। यह विषय तो योग का है और महायोगी ही ठीक निर्णय दे सकता है।

ब्रह्मर्षि जी ने कर्मों की गति पर व्याख्यान देते हुए बताया कि उनके गुरु ब्रह्मा जी ने इन्हें दण्ड देते हुए कहा कि—'''उस काल में तुम्हें गुरु भी प्राप्त न होगा।'' उस समय गुरु से निवेदन किया और कहा, ''भगवान्! हमारा कल्याण कैसे होगा? जब हम अपने सूर्यमण्डल का त्यागकर मृतमण्डल में जन्म पायेंगे और जन्म धारण करके हमें महान् योगाभ्यासी अमृत गुरु प्राप्त न होगा तो जीवन कैसे बनेगा।'' तो उस समय गुरु ने प्रसन्न होकर कहा, ''जाओ! जब तुम्हारे उस शरीर की पचास वर्ष की अवस्था हो जाएगी उस समय तुम्हें कोई ब्रह्मणी आत्मा प्राप्त हो जाएगी।''

इससे ज्ञात होता है श्रृङ्गी ऋषि की आत्मा ने महाभारत काल के बाद इस पृथ्वी मण्डल पर अब जन्म लिया है। महाभारत काल के बाद उनकी आत्मा (उनके गुरु ब्रह्मा के शाप के कारण और परमात्मा के नियमानुसार) दूसरे लोकों या मण्डल में जन्म लेती रही। अब कलियुग में उनकी आत्मा सूर्यमण्डल आदि में जन्म लेती और शरीर त्यागती हुई इस मृतलोक में आ पहुंची है। महाभारत काल से अब तक इस मृतलोक में जन्म न लेने के कारण उस समय का ज्ञान नहीं है।

९. कुछ भ्रान्तियों का निवारण और नम्र निवेदन

ब्रह्मर्षि जी को दिल्ली लाने से पहले मेरठ और मुजफ्फर नगर जिलों के ग्रामों के लोगों के अतिरिक्त जहाँ कि इनके व्याख्यान कराये जा रहे थे, इन्हें कोई नहीं जानता था। विनय (सरोजनी) नगर दिल्ली में इनके प्रवचन करवाना आरम्भ हुआ और इसके लिए प्रवचन अनुसन्धान समिति का निर्माण किया गया जिसका परिणाम यह निकला कि ब्रह्मर्षि जी के प्रवचन सुनकर सर्वत्र धूम मच गई। अनेक संस्थाओं ने चाहा कि ये वैदिक प्रवचन हमारे यहां भी हों। इन प्रवचनों में कहीं भी कोई वेद विरुद्ध मत प्रतिपादित नहीं हुआ।

दिल्ली में अनेक आर्य समाजों ने अपने यहां प्रवचनों का प्रबन्ध किया और जनता पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। ये प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। हजारों की संख्या में लोग इनके प्रवचन सुनने के लिए आने लगे। किसी एक उपदेशक के व्याख्यान सुनने को इतनी संख्या में लोग तो नहीं आते थे, परन्तु इनके व्याख्यानों में इतनी संख्या को आते देख कुछ लोगों ने भ्रांतियां (गलतफहमी–डपेनदकमतेजंदकपदहद्ध पैदा करनी शुरू कर दी कि इनको किसी ने व्याख्यान रटा दिए हैं, ये लेटकर क्यों व्याख्यान देते हैं? व्याख्यानों के समय इनका सिर क्यों हिलता है? एक ही मुख से दो–तीन प्रकार की आवाजें कैसे निकलती हैं? इत्यादि और कहा कि यह सब पाखण्ड है और ट्रैक्टों द्वारा विरोधी पुस्तकें छपवाकर हजारों की संख्या में बाँटी, किन्तु जिन्होंने लगातार इनके प्रवचनों को सुना उन पर इस प्रकार के प्रभाव न पड़े बल्कि ब्रह्मर्षि जी के द्वारा सर्वसाधारण में वेद और यज्ञ के प्रति श्रद्धा बढ़ी और उन कपोल कल्पित कहानियों का शुद्ध और वास्तविक रूप हमारे सामने आने लगा।

ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों का सर्वसाधारण तक पहुंचने के लिए ''प्रवचन अनुसन्धान समिति'' को तोड़कर नये रूप से ''वैदिक अनुसन्धान समिति'' का गठन किया गया जोकि स्वतन्त्र रूप से इनके प्रवचनों को प्रकाशित करती है और इनके प्रवचनों का आयोजन करती है।

ब्रह्मर्षि जी प्रवचन विशेष (समाधि) अवस्था में देते हैं। यह जागृत अवस्था में समाधि अवस्था है। समाधि अवस्था में जब योग में होते हैं तो अलिंग प्रकृति पर्यन्त विचार मग्न होते हैं। महर्षि दयानन्द जी भी सम्प्रज्ञात समाधि में वेद मन्त्रों के अर्थों का विचार करते थे। अन्य योगी भी इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि में चित्तवृत्ति निरोध का ही अभ्यास करते हैं। उस अवस्था में बोलते किसी को नहीं देखा। ब्रह्मर्षि जी उस अवस्था में पहुंचकर बोलते हैं अभ्यास नहीं करते हैं। बोलने पर वाग् इन्द्रिय और हाथ क्रियारत्त हो जाते हैं। वाणी के उच्चारण के साथ ही प्राण भी गति करने लगते हैं। इस स्थिति की विशेषता के कारण प्राणाघात् से सिर हिलता है यह ढोंग नहीं।

योग के आठ प्रकारों में से ''विशोका वा ज्योतिष्मती।'' प्रकाश ज्योति, दिव्य नेत्र उत्पन्न करने की विधि है। व्यास महाराज ने लिखा है ''बुद्धिसावंहि भास्वरमाकाश'' बुद्धि सत्व प्रकाशमय चमकीली है। सूर्य चन्द्र या मणि के चमक के समान भासता है। इस प्रकाश के द्वारा ही आगे योग में प्रगति होती है।

इस प्रकाश को शक्तिपूर्ति द्वारा भी प्राप्त कराने की प्रक्रिया है उसमें जब भी साधक बैठ जाता है यौगिक प्रक्रिया स्वतः आरम्भ हो जाती है। कनखल के सुप्रसिद्ध वैद्य विष्णुदत्त जी तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के व्याकरणाचार्य श्री छेदी लाल जी तथा पं. दिलीपदत्त उपाध्याय इसी प्रक्रिया के साधक थे। आज भी इस प्रक्रिया के अनेक साधक हैं। वे जब अपने आसन पर बैठते हैं तभी योग प्रक्रिया स्वतः हो जाती है। इसी प्रकार ब्रह्मर्षि जी सीधे लेटते हैं तभी यह प्रक्रिया आरभ होती है इसमें असम्भवता कुछ भी नहीं।

ब्रह्मर्षि जी ने दिनाँक 2 अक्तूबर, 1964 को गीता भवन, जम्मू में संसार' की सब भाषाओं का मूल संस्कृत भाषा' पर व्याख्यान देते हुए कहा :

''मुनिवरो! वेद में वह भोजन है जिस भोजन से आत्मा तृप्त होता है। आज मानव को संसार में अपनी आत्मा को तृप्त करना है, वेद में वह ज्ञान है जिस ज्ञान–विज्ञान से आत्मा तृप्त होती है और अपने आनन्द को अनुभव करती है, वेद में वह प्रकाश है परन्तु प्रकाश को हमें रावण की भांति नहीं, राम की भांति स्वीकार करना है। बेटा! तुमने सुना होगा रावण चारों वेदों का ज्ञाता और वैज्ञानिक था परन्तु उसके पश्चात् भी उसे दैत्य और यवन की श्रेणी में चुना जाता है और वह इसलिए कि वह अक्षरों का बोधी था, जो मानव संसार में अक्षरों का बोधी होता है उस मानव का वह वेद उत्थान नहीं करता, वह तो बेटा! एक प्रकार का पक्षी होता है और वही रटन्त विद्या को अपने में धारण करता है और उससे अपने मानवत्व को ऊंचा नहीं बनाता तो बेटा! वह संसार में रावण ही कहलाता है।''.......''आज संसार में प्रत्येक मानव उच्चारण कर देता है कि यह तो पाखण्डी है, मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे कई काल में निर्णय कराया करते हैं कि आधुनिक काल में अपने सूक्ष्म शरीर से संसार की वार्त्ताओं का पान करता हूँ तो देखता हूँ कि जहां हमारी और आपकी आकाशवाणी मृतमण्डल में जाती है वहाँ उसे पाखण्ड रूप से पुकारा जाता है परन्तु मैं कहा करता हूँ कि जिन भोले प्यारे मनुष्यों ने पाखण्ड की व्याख्या नहीं की उन्हें प्रतीत नहीं कि हम पाखण्डी किसे कहते हैं।

मुनिवरो! आज के वेद पाठ में पाखण्डी की बड़ी विस्तार से व्याख्या आती चली जा रही थी, मैं यदि पाखण्डी कहा करता हूं तो रावण को कहा करता हूं, चारों वेदों का पंडित भी संसार में पाखण्डी कहलाता है और एक अक्षर को भी न जानने वाला संसार में सदाचारी कहलाता है। यह निश्चित नहीं कि संसार में वेद पाठी ही सदाचारी बन सकता है। एक निरक्षर व्यक्ति भी सदाचारी बन सकता है जैसे रावण को अभिमान था कि सार्वभौम का स्वामी हूँ। उसके द्वारा दम्भ था, छल था, कपट था, संस्कृति से दूर था, वेद के एक वाक्य को भी अपने हृदय में पान करने वाला न था। इसलिए वह पाखण्डी कहलाता था। **संसार में वह पाखण्डी कहलाता है जो वेद ही वेद पुकारता है और वेद के अनुकूल न उसका आहार है और न व्यवहार है और न उसकी वाणी है,** केवल रटन्त मात्र उच्चारण करता है उसे मुनिवरो! हमारे यहां पाखण्डी की चुनौती दी जाती है।

आज जो दूसरों से द्वेष करता है, अपनी प्रशंसा को जान कर अपने आत्मत्व को समाप्त करता रहता है, वह संसार में पाखण्डी कहलाता है। वेद में एक मन्त्र आता है :

''रूढ़िश्यति ब्राह्मणः बाचनोति पाखण्ड अमरोतश्चति विश्वम् ममेते।

वारणोति ब्राह्मणः कामश्चति वेतु न देवम् ममिते निश्चया।।''

ऐसा कहा है कि जिसका निश्चय ही नहीं, जिसकी कोई धारणा ही नहीं, जिसके उदार भाव ही नहीं वह संसार में दम्भी, छली और कपटी कहलाता है।

ऐसे ही एक और स्थान पर 19 जुलाई, 64 को राजा बाग में 'योगमुद्रा'' के विषय पर प्रवचन करते हुए कहा ''मेरे प्यारे महानन्द जी मुझसे कहते हैं कि आजका संसार, जब मैं मृतलोक के मनुष्यों की भिन्न–भिन्न प्रकार की चर्चाओं को पान करता हूं तो देखता हूं कि जिसके हृदय में दुर्व्यसन हैं वह आप को ढोंगी कहता है, कोई पाखण्डी कहता है। यह तो मैंने महानन्द जी से पूर्वकाल में कहा था कि यह तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का एक अनुपम आशीर्वाद है और क्यों आशीर्वाद कहा करता हूं क्योंकि जब सत्यवादी मनुष्यों पर किसी प्रकार का आक्रमण किया जाता है तो मानो कि सत्यवादी मनुष्य के किसी काल में कोई पाप हो जाए तो वह भी नष्ट होता रहता है। मैंने, उस जन्म में पाप किया था और यदि आज का संसार पाखण्डी या ढोंगी कह कर नहीं पुकारेगा तो बेटा! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वाक्य मिथ्या हो जाएगा, इसलिए वाक्य मिथ्या न होने के कारण आशीर्वाद मानता हूँ।

परम्परा से मैं इन विचारों को मानता चला आया हूँ। आजका यह संसार तो उच्चारण करता रहेगा और करता आया है, आक्रमण करता रहेगा परन्तु तुम अपने विचारों को मत त्यागो संसार में। जो मनुष्य आपत्तिकाल में अपने महान् विचारों को त्याग देता है उससे अधिक कोई पापी नहीं होता संसार में। उसका कारण यह है कि देखो यह प्रकृति का आक्रमण है, मनुष्यों के विचारों का आक्रमण है और यदि इन आक्रमण से वह मनुष्य अपनी वृत्तियों से हिल गया या उसकी शान्त मुद्रा क्रोध में छा गई तो उसका मानवत्व कोई

महत्वदायक नहीं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे आज से लाखों वर्ष पूर्व आदेश दिया था उसको भोग रहा हूँ और भोगता चला जाऊंगा जब तक इसकी अवधि है। जो किया हुआ कर्म है वह भोगना प्रत्येक मानव को अनिवार्य है और भोगना चाहिए आनन्दपूर्वक भोगना चाहिए क्योंकि वह कर्म हमने किया है, न करते तो न भोगते।

यह हम पूर्व वर्णन कर चुके हैं कि ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी की आत्मा तो सतोयुग की आत्मा है और महाभारत काल तक को, उस आत्मा ने देखा। उसी ज्ञान और संस्कारों के आधार पर वे वैदिक धर्म का प्रसार करते हैं। 1.1.1962 से इनके प्रवचन टेपरिकार्ड करने आरम्भ हुए और इनको पाखण्डी कहने वालों की शंकाओं का समाधान हो गया। 2.3.62 को 'कर्मों की गति', 29.7.1964 को 'योग मुद्रा' और 2.10.1964 को 'संसार की सब भाषाओं का मूल संस्कृत' पर प्रवचन देते हुए उन्होंने बता दिया है कि ये पूर्व जन्म में कौन थे, उनके प्रवचन कहां से प्रसारित होते हैं और प्रवचनों के समय इनका सिर क्यों हिलता है इत्यादि। इसके अतिरिक्त योगी, डाक्टर विद्वानों ने उनको देखकर और प्रवचन सुनकर अपनी शुभ सम्मितियां भी दे दी हैं। ये ढोंग क्यों करेंगे वह किसी से पैसा नहीं मांगते। इनकी तो यह क्रिया स्वतः होती हैं जब भी यह पीठ के बल चित्त लेट जाते हैं तो समाधि लग जाती है और लगभग पन्द्रह मिनट के पश्चात् प्रवचन आरम्भ हो जाता है।

जिस वैदिक संस्कृति के नाद को ऋषि ब्रह्मा, महाराजा विष्णु और कैलाशपति महाराज शिव ने बजाया, उसी नाद को राम और कृष्ण ने बजाया, आधुनिक काल में दो शंकरों अर्थात् शंकराचार्य और मूलशंकर ने हर प्रकार की आपत्तियां सहकर उसी वैदिक संस्कृति के नाद को बजाया है। आजका संसार उनकी बातों को न मानकर अपनी मनमानी करने लगा, ऋषि महानन्द जी के शब्दों में, एक के पुजारी तो सभी ब्रह्म बन गए और दूसरे के मठाधीश, अपने कर्त्तव्यों को भुला दिया। आज एक ऋषि अनपढ़ बनकर फिर से उसी वैदिक संस्कृति का नाद बजा रहा है और अपने प्रवचनों में ब्रह्मा ऋषि, महाराज विष्णु, महाराजा कैलाशपति शिव, राम, कृष्ण, शंकराचार्य और दयानन्द की महत्ता के गुण गाता हुआ सर्वसाधारण के सामने वेद और यज्ञ के प्रति प्रेम कराता हुआ अपने आपको पाखण्डी कहलाने में गौरव मानता है।

स्वामी दयानन्द जी का आदेश है कि "सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।" गौरव तो इसमें था कि उच्चकोटि के विद्वान बैठकर, प्रभु प्रेरणा से प्राप्त पूर्व जन्म के संस्कारों से युक्त इस महान् व्यक्तित्व को अपनाकर जनकल्याण में अपना सहयोग प्राप्त कराते, पर कुछ लोगों ने अपने हलवे मांडे, कुरीतियों, झूठी मान और शान को आगे रखा और आर्य समाज मन्दिरों और सनातन धर्म मन्दिरों में व्याख्यान न करवाने का आग्रह किया। यदि वैदिक प्रवचन हम नहीं करवायेगें तो क्या यवन और ईसाई इनके व्याख्यान करवायेगें? हमने तो उन्हें बताना है कि आत्मा कयामत (प्रलय) तक कब्र में नहीं सड़ता रहता। पुर्नजन्म का सिद्धान्त अटल है, सत्य है और इस सिद्धान्त को बताने वाला वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद की शरण में आकर ही आत्मवाद हमें उन्नति की ओर ले जाएगा, नहीं तो बिना आत्मवाद के भौतिकवाद हम सभी को ले डूबेगा जैसे रावण का भौतिकवाद, बिना आत्मवाद के उसे ले डूबा।

प्रिय पाठक वृन्द! यह ठीक है कि "दूध का जला छांछ को भी फूंक–फूंक कर पीता है" और इसमें हानि भी नहीं पर शुद्ध श्वेतिमा देखकर सर्वत्र ऊष्ण दूध का ही निश्चय और आग्रह नहीं करते रहना चाहिए। तथ्य को समझने का यत्न करेंगे तभी तथ्य समझने में आएगा।

१०. श्री ब्रह्मर्षि जी परिष्कृत हिन्दी कैसे बोल लेते हैं?

(महानन्द) भगवन् मैंने आज से पूर्वकाल में कुछ प्रश्न किये थे कि आप देव नागरी में क्यों उच्चारण करते हैं?

हास्य......सुनो। मुनिवरो! अभी–अभी मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ वाक्य आरम्भ कर रहे थे जो बड़े महत्त्वदायक और उदारता के थे। इनके वाक्य आधुनिक काल के राष्ट्र सम्बन्धी थे। इसके पश्चात् इनका एक प्रश्न है देवनागरी का, पुरातन काल में केवल संस्कृत थी देवनागरी न थी, वह प्राकृतिक भाषा हमें वेदों में प्राप्त होती है, पुरातन काल में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक ऋषिमण्डल सब ही संस्कृत का प्रतिपादन करता था, ऐसा इनका वचन है कि आधुनिक काल में कुछ समय से ही इस देवनागरी का प्रचलन हुआ।

बेटा! पुरातन काल से संसार में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के मनुष्य चले आ रहे हैं। पुरातन काल में ऐसा था कि जो मनुष्य संस्कृत उच्चारण नहीं कर सकता था, विद्या में इतना पारंगत नहीं था, वह देवनागरी का प्रयोग करता था।

अब यह वाक्य उत्पन्न होता है कि जब केवल एक ही भाषा थी जो देवनागरी उस अज्ञानी मनुष्य के द्वारा कहां से आई? क्योंकि किसी संस्कृत परिवार में पालन करने, पोषण होने वाले बालक के द्वारा संस्कृत ही आती है, जब उसके द्वारा और भाषा का चलन नहीं आता तो और भाषा किस प्रकार उच्चारण कर सकता है?

हमारे यहां परम्परा से यह माना जाता है कि प्रत्येक भाषा अंकुर रूप से रहती हैं, रही यह वार्ता कि किस काल में बुद्धिमान अधिक होते हैं, ऋषि–मुनियों का प्रसार होता है, संस्कृत का प्रभाव हो जाता है परन्तु वह जो देवनागरी भाषा है वह भी अंकुर रूपों से रहती है, यदि अंकुर रूप से कोई वाणी न रहे तो संसार में कोई व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ जिसने बेटा! कोई नवीन भाषा को संसार में उत्पन्न कर दिया हो।

आप देवनागरी में क्यों उच्चारण करते हैं तो इसका उत्तर यह है कि वास्तव में मैंने परम्परा से परमात्मा की अनुपम कृपा से गुरुओ में ओत–प्रोत हो करके संस्कृत को जाना था, जाना तो नहीं था परन्तु कुछ सूक्ष्म सा अभ्यास था परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा था कि जैसा चरण होगा, जैसा समाज होगा और जैसा प्रबन्ध होगा अन्तरिक्ष में वाक्य रमण करते हैं वही वाक्य वाणी द्वारा अंकित हो करके प्रारम्भ होने लगते हैं परन्तु यह यौगिक वाक्य है और द्वितीय वाक्य यह है कि जो बेटा! संसार में आत्मा के तत्त्व को जान लेता है तो निश्चित है कि वह संसार में क्या नहीं जानता। बेटा! तुम्हारे प्रश्न के नाना उत्तर हो सकते हैं परन्तु मैं इसका विस्तार नहीं देना चाहता, संक्षेप में यह कि ये सब जितनी भाषायें होती हैं ये सब अंकुर रूपों से रहती हैं और इनका मिलान उच्च संस्कृत से होता है।

११. भगवान अवतार नहीं लेते ये तो देवयान की आत्माएं मृतलोक में आती हैं

ब्रह्मर्षि जी : मुनिवरो! आज हम देवयान की चर्चा कर रहे थे। सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में रमण करने वाली आत्माओं को देवता कहते हैं। देवता वे होते हैं जो हमें कुछ देते हैं। वे आत्माएं इस संसार को देखा करते हैं जब यहां किसी पदार्थ की सूक्ष्मता हो जाती है तब ही आ कूदते हैं।

''मुनिवरो देखो! महाराज कृष्ण के समय कितना दुराचार आ चुका था और कितना विज्ञान आ चुका था। परन्तु भगवान कृष्ण के जीवन को छू न सका। देवता उसी को कहते हैं जिसके जीवन को यह रजोगुण छू न सके। उनको जानो व देवयान से आए हैं वे संसार में कुछ कर्म करके जाएंगे तो देवयान में ही जाएंगे। देवयान उसको कहते हैं जहां दिव्य–आत्माएं रमण करती हैं।......''

''वे तो अपने आनन्द में रमण करते हुए इस महान् संसार को देखते हैं। संसार में वैदिक निधि शून्य होने पर उसको उच्च बनाने के लिए देवता स्वयम् इच्छा के अनुकूल प्रकट हो जाते हैं और उस महत्ता का प्रसार करके यहां से चल बसते है।''

''मुनिवरो! जैसे भगवान् कृष्ण के पूर्व जन्म का विवरण मिलता है भगवान कृष्ण इस कृष्ण जीवन से पूर्व मध्यूनपान ऋषि महाराज थे। मध्यूनपान ऋषि महाराज जब देवयान में विचरण करते थे तो संसार को देखा करते थे कि यहां क्या हो रहा है। यह कौन सी प्रगति को जा रहा है। जब यहां वैज्ञानिक यन्त्रों का आविष्कार किया जा रहा था और राजा कंस के अत्याचारों से महापाप छा रहा था उस काल में मध्यूनपान ऋषि, माता देवकी के यहां आ करके उस महान् कष्ट यात्रा में माता के गर्भस्थल में धारण होकर माता यशोदा के गृह में पहुँचे। उन्होंने आ करके संसार का ऊँचा बनाया और अर्जुन से कहा कि मैं सब प्रकृति को जानता हूं परन्तु मैं उस कर्म को नहीं करूँगा जिस कर्म के करने से यह संसार तुच्छ बन जाए, मुझे तो वह कर्म करना है जिससे यह संसार ऊँचा बने। तो मुनिवरो! उसका नाम देवयान है जहाँ संसार को देखा जाता है.....।''

''मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कुछ महर्षि अटूटी महाराज का विवरण दिया कि वे देवयान में रमण करते थे जिनके जीवन की कुछ घटनाएं प्राप्त होती हैं।

उस समय देखो! उस बालक अटूटी ने माता के महान आदेशों का पालन करके ब्रह्मर्षि बन करके देवयान का प्रयत्न किया। धारणा ध्यान, समाधियों में संलग्न होकर इस अन्तरिक्ष को और तीनों प्रकार की वायु से जैसा मैंने पूर्वकाल में कहा है कि जैसे सोमहीति, मध्यान और इन्द्र वायु है, ऊपर के स्थल में जिसको देवयान कहा जाता है उसमें विचरने वाले बने। माता ने उसको आदेश दिया था कि वह वेद की अमूल्य निधि है। हे पुत्र! जब–जब यह लुप्त हो जाए तू उसको ऊंचा बनाना तो मुनिवरो! उस माता के बालक ने वेद की अमूल्य निधि को जानकर देवयान में रमण किया। इसके पश्चात् जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी से सूचना मिली है कि उसी आत्मा ने इस कलियुग में आकर माता के गर्भ में जन्म लिया और जन्म पाकर ऋषि दयानन्द' बनके संसार को ऊँचा बनाने का यत्न किया।''

''आज हमें देवयान की वार्ताओं को स्वीकार कर लेना चाहिए जो देवता हमें आदेश देकर यहां से देवयान चले जाते हैं और देवयान से आकर हमारे कल्याण के लिए सोचते है। आज उन देवताओं की वार्ताओं को स्वीकार कर संसार से ऊँचा बनना है।.........'' (पुष्प 4 प्रवचन 1)

''प्रभु! हम यह उच्चारण नहीं कर रहे कि आप मनुष्य बन कर आइये, परन्तु उन आत्माओं को प्रेरित करें जो परम्परा से यहां चली आ रही हैं और संसार का कल्याण कर देती हैं, वे यहां तेरी वेदवाणी का प्रसार करके उसी स्थान को रमण कर जाती हैं जहां से वे आत्मा आती है। प्रभु! यदि हमारी याचना को स्वीकार करे वे आत्मा अवश्य उत्पन्न करें यदि ऐसा न हुआ तो तेरे बनाए हुए विधान की, मनु महाराज के विधान की और आपकी वेद–वाणी रक्षा न हो सकेगी।'' (पुष्प 4 प्रवचन 6)

लोमश मुनिः मेरे प्यारे अन्य ऋषियों ने ऐसा कहा है कि हमारा जन्म हो तो महान् इस पवित्र भूमि पर हो, जहाँ मेरी माताएं और मेरे प्यारे विधाता ब्रह्मचर्य का पालन करके अपने राष्ट्र को और अपने जीवन को ऊँचा बना गए हैं।''

''यहाँ तो उन आत्माओं की आवश्यकता है जो आत्माएं यहाँ आ करके वैदिक पथ को दर्शा जाएँ, यहाँ उन आत्माओं की आवश्यकता नहीं जो अपने स्वार्थ को पूर्ण करने वाली हों और वेद को विपरीत चलाने वाले हों। यदि यह संसार एक साथ मिलकर प्रभु से याचना करे कि हे प्रभु! हमारे मध्य में उस व्यक्ति को न भेज जो हमारी आत्माओं के उत्सव को हताश बना दे, वह आत्मा आए जो यहाँ आ करके वेदो का प्रसार करे और सब महान् वेदों को और संस्कृति को जानने वाले बनें।''

''एक समय विधाता महानन्द जी ने कहा कि आधुनिक काल में कुछ व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि जैसे महाराजा राम, महाराज कृष्ण और भी नाना जैसे वामन, मच्छ अवतार हुए इसी प्रकार कलियुग में निष्कलंक अवतार आने वाला है। परन्तु यह वाक्य यथार्थ हो जाएगा, और कैसे हो जाएगा कि कोई न कोई ऐसा वैज्ञानिक अवश्य उत्पन्न हो जायेगा, जो महाभारत जैसे वैज्ञानिक संग्राम के लिए उन यान्त्रिक रेखाओं को जानेगा जो महाराजा कृष्ण ने और त्रेता में लक्ष्मण ने जाना। यह अनुमान है कि जब तक भौतिक विज्ञान का विश्व संग्राम न होगा तब तक कोई ऐसा आत्मा उत्पन्न न होगा। आज का मानव कहता है कि यह महान् आत्मा कहाँ उत्पन्न होगी, कैसे होगी? तो यह तो क्या उच्चारण करेंगे, न प्रतीत कौन आत्मा कहां पुनः उत्थान होकर आ जाती है, यह हमारा निश्चय नहीं परन्तु ऐसा अनुमान है.....।'' (पुष्प 5ए प्रवचन 8ए पृष्ठ 139 और 147)

१२. कुछ भ्रान्तियों का निवारण और नम्र निवेदन

ब्रह्मर्षि जी को दिल्ली लाने से पहले मेरठ और मुजफ्फर नगर जिलों के ग्रामों के लोगों के अतिरिक्त जहाँ कि इनके व्याख्यान कराये जा रहे थे, इन्हें कोई नहीं जानता था। विनय (सरोजनी) नगर दिल्ली में इनके प्रवचन करवाना आरम्भ हुआ और इसके लिए प्रवचन अनुसन्धान समिति का निर्माण किया गया जिसका परिणाम यह निकला कि ब्रह्मर्षि जी के प्रवचन सुनकर सर्वत्र धूम मच गई। अनेक संस्थाओं ने चाहा कि ये वैदिक प्रवचन हमारे यहां भी हों। इन प्रवचनों में कहीं भी कोई वेद विरुद्ध मत प्रतिपादित नहीं हुआ।

दिल्ली में अनेक आर्य समाजों ने अपने यहां प्रवचनों का प्रबन्ध किया और जनता पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। ये प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। हजारों की संख्या में लोग इनके प्रवचन सुनने के लिए आने लगे। किसी एक उपदेशक के व्याख्यान सुनने को इतनी संख्या में लोग तो नहीं आते थे, परन्तु इनके व्याख्यानों में इतनी संख्या को आते देख कुछ लोगों ने भ्रांतियां (गलतफहमी–डपेनदकमतेजंदकपदहद्ध पैदा करनी शुरू कर दी कि इनको किसी ने व्याख्यान रटा दिए हैं, ये लेटकर क्यों व्याख्यान देते हैं? व्याख्यानों के समय इनका सिर क्यों हिलता है? एक ही मुख से दो–तीन प्रकार की आवाजें कैसे निकलती हैं? इत्यादि और कहा कि यह सब पाखण्ड है और ट्रैक्टों द्वारा विरोधी पुस्तकें छपवाकर हजारों की संख्या में बाँटी, किन्तु जिन्होंने लगातार इनके प्रवचनों को सुना उन पर इस प्रकार के प्रभाव न पड़े बल्कि ब्रह्मर्षि जी के द्वारा सर्वसाधारण में वेद और यज्ञ के प्रति श्रद्धा बढ़ी और उन कपोल कल्पित कहानियों का शुद्ध और वास्तविक रूप हमारे सामने आने लगा।

ब्रह्मर्षि जी के प्रवचनों का सर्वसाधारण तक पहुंचने के लिए ''प्रवचन अनुसन्धान समिति'' को तोड़कर नये रूप से ''वैदिक अनुसन्धान समिति'' का गठन किया गया जोकि स्वतन्त्र रूप से इनके प्रवचनों को प्रकाशित करती है और इनके प्रवचनों का आयोजन करती है।

ब्रह्मर्षि जी प्रवचन विशेष (समाधि) अवस्था में देते हैं। यह जागृत अवस्था में समाधि अवस्था है। समाधि अवस्था में जब योग में होते हैं तो अलिंग प्रकृति पर्यन्त विचार मग्न होते हैं। महर्षि दयानन्द जी भी सम्प्रज्ञात समाधि में वेद मन्त्रों के अर्थों का विचार करते थे। अन्य योगी भी इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि में चित्तवृत्ति निरोध का ही अभ्यास करते हैं। उस अवस्था में बोलते किसी को नहीं देखा। ब्रह्मर्षि जी उस अवस्था में पहुंचकर बोलते हैं अभ्यास नहीं करते हैं। बोलने पर वाग् इन्द्रिय और हाथ क्रियारत्त हो जाते हैं। वाणी के उच्चारण के साथ ही प्राण भी गति करने लगते हैं। इस स्थिति की विशेषता के कारण प्राणाघात् से सिर हिलता है यह ढोंग नहीं।

योग के आठ प्रकारों में से ''विशोका वा ज्योतिष्मती।'' प्रकाश ज्योति, दिव्य नेत्र उत्पन्न करने की विधि है। व्यास महाराज ने लिखा है ''बुद्धिसावंहि भास्वरमाकाश'' बुद्धि सत्व प्रकाशमय चमकीली है। सूर्य चन्द्र या मणि के चमक के समान भासता है। इस प्रकाश के द्वारा ही आगे योग में प्रगति होती है।

इस प्रकाश को शक्तिपूर्ति द्वारा भी प्राप्त कराने की प्रक्रिया है उसमें जब भी साधक बैठ जाता है यौगिक प्रक्रिया स्वतः आरम्भ हो जाती है। कनखल के सुप्रसिद्ध वैद्य विष्णुदत्त जी तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के व्याकरणाचार्य श्री छेदी लाल जी तथा पं. दिलीपदत्त उपाध्याय इसी प्रक्रिया के साधक थे। आज भी इस प्रक्रिया के अनेक साधक हैं। वे जब अपने आसन पर बैठते हैं तभी योग प्रक्रिया स्वतः हो जाती है। इसी प्रकार ब्रह्मर्षि जी सीधे लेटते हैं तभी यह प्रक्रिया आरभ होती है इसमें असम्भवता कुछ भी नहीं।

ब्रह्मर्षि जी ने दिनाँक 2 अक्तूबर, 1964 को गीता भवन, जम्मू में संसार' की सब भाषाओं का मूल संस्कृत भाषा' पर व्याख्यान देते हुए कहा :

''मुनिवरो! वेद में वह भोजन है जिस भोजन से आत्मा तृप्त होता है। आज मानव को संसार में अपनी आत्मा को तृप्त करना है, वेद में वह ज्ञान है जिस ज्ञान–विज्ञान से आत्मा तृप्त होती है और अपने आनन्द को अनुभव करती है, वेद में वह प्रकाश है परन्तु प्रकाश को हमें रावण की भांति नहीं, राम की भांति स्वीकार करना है। बेटा! तुमने सुना होगा रावण चारों वेदों का ज्ञाता और वैज्ञानिक था परन्तु उसके पश्चात् भी उसे दैत्य और यवन की श्रेणी में चुना जाता है और वह इसलिए कि वह अक्षरों का बोधी था, जो मानव संसार में अक्षरों का बोधी होता है उस मानव का वह वेद उत्थान नहीं करता, वह तो बेटा! एक प्रकार का पक्षी होता है और वही रटन्त विद्या को अपने में धारण करता है और उससे अपने मानवत्व को ऊंचा नहीं बनाता तो बेटा! वह संसार में रावण ही कहलाता है।''.......''आज संसार में प्रत्येक मानव उच्चारण कर देता है कि यह तो पाखण्डी है, मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे कई काल में निर्णय कराया करते हैं कि आधुनिक काल में अपने सूक्ष्म शरीर से संसार की वार्त्ताओं का पान करता हूँ तो देखता हूँ कि जहां हमारी और आपकी आकाशवाणी मृतमण्डल में जाती है वहाँ उसे पाखण्ड रूप से पुकारा जाता है परन्तु मैं कहा करता हूँ कि जिन भोले प्यारे मनुष्यों ने पाखण्ड की व्याख्या नहीं की उन्हें प्रतीत नहीं कि हम पाखण्डी किसे कहते हैं।

मुनिवरो! आज के वेद पाठ में पाखण्डी की बड़ी विस्तार से व्याख्या आती चली जा रही थी, मैं यदि पाखण्डी कहा करता हूं तो रावण को कहा करता हूं, चारों वेदों का पंडित भी संसार में पाखण्डी कहलाता है और एक अक्षर को भी न जानने वाला संसार में सदाचारी कहलाता है। यह निश्चित नहीं कि संसार में वेद पाठी ही सदाचारी बन सकता है। एक निरक्षर व्यक्ति भी सदाचारी बन सकता है जैसे रावण को अभिमान था कि सार्वभौम का स्वामी हूँ। उसके द्वारा दम्भ था, छल था, कपट था, संस्कृति से दूर था, वेद के एक वाक्य को भी अपने हृदय में पान करने वाला न था। इसलिए वह पाखण्डी कहलाता था। **संसार में वह पाखण्डी कहलाता है जो वेद ही वेद पुकारता है और वेद के अनुकूल न उसका आहार है और न व्यवहार है और न उसकी वाणी है,** केवल रटन्त मात्र उच्चारण करता है उसे मुनिवरो! हमारे यहां पाखण्डी की चुनौती दी जाती है।

आज जो दूसरों से द्वेष करता है, अपनी प्रशंसा को जान कर अपने आत्मत्व को समाप्त करता रहता है, वह संसार में पाखण्डी कहलाता है। वेद में एक मन्त्र आता है :

''रूढ़िश्यति ब्राह्मणः बाचनोति पाखण्ड अमरोतश्चति विश्वम् ममेते।

वारणोति ब्राह्मणः कामश्चति वेतु न देवम् ममिते निश्चया।।''

ऐसा कहा है कि जिसका निश्चय ही नहीं, जिसकी कोई धारणा ही नहीं, जिसके उदार भाव ही नहीं वह संसार में दम्भी, छली और कपटी कहलाता है।

ऐसे ही एक और स्थान पर 19 जुलाई, 64 को राजा बाग में 'योगमुद्रा'' के विषय पर प्रवचन करते हुए कहा ''मेरे प्यारे महानन्द जी मुझसे कहते हैं कि आजका संसार, जब मैं मृतलोक के मनुष्यों की भिन्न–भिन्न प्रकार की चर्चाओं को पान करता हूं तो देखता हूं कि जिसके हृदय में दुर्व्यसन हैं वह आप को ढोंगी कहता है, कोई पाखण्डी कहता है। यह तो मैंने महानन्द जी से पूर्वकाल में कहा था कि यह तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का एक अनुपम आशीर्वाद है और क्यों आशीर्वाद कहा करता हूं क्योंकि जब सत्यवादी मनुष्यों पर किसी प्रकार का आक्रमण किया जाता है तो मानो कि सत्यवादी मनुष्य के किसी काल में कोई पाप हो जाए तो वह भी नष्ट होता रहता है। मैंने, उस जन्म में पाप किया था और यदि आज का संसार पाखण्डी या ढोंगी कह कर नहीं पुकारेगा तो बेटा! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वाक्य मिथ्या हो जाएगा, इसलिए वाक्य मिथ्या न होने के कारण आशीर्वाद मानता हूँ।

परम्परा से मैं इन विचारों को मानता चला आया हूँ। आजका यह संसार तो उच्चारण करता रहेगा और करता आया है, आक्रमण करता रहेगा परन्तु तुम अपने विचारों को मत त्यागो संसार में। जो मनुष्य आपत्तिकाल में अपने महान् विचारों को त्याग देता है उससे अधिक कोई पापी नहीं होता संसार में। उसका कारण यह है कि देखो यह प्रकृति का आक्रमण है, मनुष्यों के विचारों का आक्रमण है और यदि इन आक्रमण से वह मनुष्य अपनी वृत्तियों से हिल गया या उसकी शान्त मुद्रा क्रोध में छा गई तो उसका मानवत्व कोई महत्वदायक नहीं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे आज से लाखों वर्ष पूर्व आदेश दिया था उसको भोग रहा हूँ और भोगता चला जाऊंगा जब तक इसकी अवधि है। जो किया हुआ कर्म है वह भोगना प्रत्येक मानव को अनिवार्य है और भोगना चाहिए आनन्दपूर्वक भोगना चाहिए क्योंकि वह कर्म हमने किया है, न करते तो न भोगते।

यह हम पूर्व वर्णन कर चुके हैं कि ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी की आत्मा तो सतोयुग की आत्मा है और महाभारत काल तक को, उस आत्मा ने देखा। उसी ज्ञान और संस्कारों के आधार पर वे वैदिक धर्म का प्रसार करते हैं। 1.1.1962 से इनके प्रवचन टेपरिकार्ड करने आरम्भ हुए और इनको पाखण्डी कहने वालों की शंकाओं का समाधान हो गया। 2.3.62 को 'कर्मों की गति', 29.7.1964 को 'योग मुद्रा' और 2.10.1964 को 'संसार की सब भाषाओं का मूल संस्कृत' पर प्रवचन देते हुए उन्होंने बता दिया है कि ये पूर्व जन्म में कौन थे, उनके प्रवचन कहां से प्रसारित होते हैं और प्रवचनों के समय इनका सिर क्यों हिलता है इत्यादि। इसके अतिरिक्त योगी, डाक्टर विद्वानों ने उनको देखकर और प्रवचन सुनकर अपनी शुभ सम्मितियां भी दे दी हैं। ये ढोंग क्यों

करेंगे वह किसी से पैसा नहीं मांगते। इनकी तो यह क्रिया स्वतः होती हैं जब भी यह पीठ के बल चित्त लेट जाते हैं तो समाधि लग जाती है और लगभग पन्द्रह मिनट के पश्चात् प्रवचन आरम्भ हो जाता है।

जिस वैदिक संस्कृति के नाद को ऋषि ब्रह्मा, महाराजा विष्णु और कैलाशपति महाराज शिव ने बजाया, उसी नाद को राम और कृष्ण ने बजाया, आधुनिक काल में दो शंकरों अर्थात् शंकराचार्य और मूलशंकर ने हर प्रकार की आपत्तियां सहकर उसी वैदिक संस्कृति के नाद को बजाया है। आजका संसार उनकी बातों को न मानकर अपनी मनमानी करने लगा, ऋषि महानन्द जी के शब्दों में, एक के पुजारी तो सभी ब्रह्म बन गए और दूसरे के मठाधीश, अपने कर्त्तव्यों को भुला दिया। आज एक ऋषि अनपढ़ बनकर फिर से उसी वैदिक संस्कृति का नाद बजा रहा है और अपने प्रवचनों में ब्रह्मा ऋषि, महाराज विष्णु, महाराजा कैलाशपति शिव, राम, कृष्ण, शंकराचार्य और दयानन्द की महत्ता के गुण गाता हुआ सर्वसाधारण के सामने वेद और यज्ञ के प्रति प्रेम कराता हुआ अपने आपको पाखण्डी कहलाने में गौरव मानता है।

स्वामी दयानन्द जी का आदेश है कि "सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।" गौरव तो इसमें था कि उच्चकोटि के विद्वान बैठकर, प्रभु प्रेरणा से प्राप्त पूर्व जन्म के संस्कारों से युक्त इस महान् व्यक्तित्व को अपनाकर जनकल्याण में अपना सहयोग प्राप्त कराते, पर कुछ लोगों ने अपने हलवे मांडे, कुरीतियों, झूठी मान और शान को आगे रखा और आर्य समाज मन्दिरों और सनातन धर्म मन्दिरों में व्याख्यान न करवाने का आग्रह किया। यदि वैदिक प्रवचन हम नहीं करवायेगें तो क्या यवन और ईसाई इनके व्याख्यान करवायेगें? हमने तो उन्हें बताना है कि आत्मा कयामत (प्रलय) तक कब्र में नहीं सड़ता रहता। पुर्नजन्म का सिद्धान्त अटल है, सत्य है और इस सिद्धान्त को बताने वाला वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद की शरण में आकर ही आत्मवाद हमें उन्नति की ओर ले जाएगा, नहीं तो बिना आत्मवाद के भौतिकवाद हम सभी को ले डूबेगा जैसे रावण का भौतिकवाद, बिना आत्मवाद के उसे ले डूबा।

प्रिय पाठक वृन्द! यह ठीक है कि "दूध का जला छांछ को भी फूंक—फूंक कर पीता है" और इसमें हानि भी नहीं पर शुद्ध श्वेतिमा देखकर सर्वत्र ऊष्ण दूध का ही निश्चय और आग्रह नहीं करते रहना चाहिए। तथ्य को समझने का यत्न करेंगे तभी तथ्य समझने में आएगा।

१३. श्री ब्रह्मर्षि जी परिष्कृत हिन्दी कैसे बोल लेते हैं?

(महानन्द) भगवन् मैंने आज से पूर्वकाल में कुछ प्रश्न किये थे कि आप देव नागरी में क्यों उच्चारण करते हैं?

हास्य......सुनो। मुनिवरो! अभी—अभी मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ वाक्य आरम्भ कर रहे थे जो बड़े महत्त्वदायक और उदारता के थे। इनके वाक्य आधुनिक काल के राष्ट्र सम्बन्धी थे। इसके पश्चात् इनका एक प्रश्न है देवनागरी का, पुरातन काल में केवल संस्कृत थी देवनागरी न थी, वह प्राकृतिक भाषा हमें वेदों में प्राप्त होती है, पुरातन काल में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक ऋषिमण्डल सब ही संस्कृत का प्रतिपादन करता था, ऐसा इनका वचन है कि आधुनिक काल में कुछ समय से ही इस देवनागरी का प्रचलन हुआ।

बेटा! पुरातन काल से संसार में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के मनुष्य चले आ रहे हैं। पुरातन काल में ऐसा था कि जो मनुष्य संस्कृत उच्चारण नहीं कर सकता था, विद्या में इतना पारंगत नहीं था, वह देवनागरी का प्रयोग करता था।

अब यह वाक्य उत्पन्न होता है कि जब केवल एक ही भाषा थी जो देवनागरी उस अज्ञानी मनुष्य के द्वारा कहां से आई? क्योंकि किसी संस्कृत परिवार में पालन करने, पोषण होने वाले बालक के द्वारा संस्कृत ही आती है, जब उसके द्वारा और भाषा का चलन नहीं आता तो और भाषा किस प्रकार उच्चारण कर सकता है?

हमारे यहां परम्परा से यह माना जाता है कि प्रत्येक भाषा अंकुर रूप से रहती हैं, रही यह वार्ता कि किस काल में बुद्धिमान अधिक होते हैं, ऋषि—मुनियों का प्रसार होता है, संस्कृत का प्रभाव हो जाता है परन्तु

वह जो देवनागरी भाषा है वह भी अंकुर रूपों से रहती है, यदि अंकुर रूप से कोई वाणी न रहे तो संसार में कोई व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ जिसने बेटा! कोई नवीन भाषा को संसार में उत्पन्न कर दिया हो।

आप देवनागरी में क्यों उच्चारण करते हैं तो इसका उत्तर यह है कि वास्तव में मैंने परम्परा से परमात्मा की अनुपम कृपा से गुरुओ में ओत–प्रोत हो करके संस्कृत को जाना था, जाना तो नहीं था परन्तु कुछ सूक्ष्म सा अभ्यास था परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा था कि जैसा चरण होगा, जैसा समाज होगा और जैसा प्रबन्ध होगा अन्तरिक्ष में वाक्य रमण करते हैं वही वाक्य वाणी द्वारा अंकित हो करके प्रारम्भ होने लगते हैं परन्तु यह यौगिक वाक्य है और द्वितीय वाक्य यह है कि जो बेटा! संसार में आत्मा के तत्त्व को जान लेता है तो निश्चित है कि वह संसार में क्या नहीं जानता। बेटा! तुम्हारे प्रश्न के नाना उत्तर हो सकते हैं परन्तु मैं इसका विस्तार नहीं देना चाहता, संक्षेप में यह कि ये सब जितनी भाषायें होती हैं ये सब अंकुर रूपों से रहती हैं और इनका मिलान उच्च संस्कृत से होता है।

भगवान अवतार नहीं लेते ये तो देवयान की आत्माएं मृतलोक में आती हैं

ब्रह्मर्षि जी : मुनिवरो! आज हम देवयान की चर्चा कर रहे थे। सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में रमण करने वाली आत्माओं को देवता कहते हैं। देवता वे होते हैं जो हमें कुछ देते हैं। वे आत्माएं इस संसार को देखा करते हैं जब यहां किसी पदार्थ की सूक्ष्मता हो जाती है तब ही आ कूदते हैं।

''मुनिवरो देखो! महाराज कृष्ण के समय कितना दुराचार आ चुका था और कितना विज्ञान आ चुका था। परन्तु भगवान कृष्ण के जीवन को छू न सका। देवता उसी को कहते हैं जिसके जीवन को यह रजोगुण छू न सके। उनको जानो व देवयान से आए हैं वे संसार में कुछ कर्म करके जाएंगे तो देवयान में ही जाएंगे। देवयान उसको कहते हैं जहां दिव्य–आत्माएं रमण करती हैं।......''

''वे तो अपने आनन्द में रमण करते हुए इस महान् संसार को देखते हैं। संसार में वैदिक निधि शून्य होने पर उसको उच्च बनाने के लिए देवता स्वयम् इच्छा के अनुकूल प्रकट हो जाते हैं और उस महत्ता का प्रसार करके यहां से चल बसते है।''

''मुनिवरो! जैसे भगवान् कृष्ण के पूर्व जन्म का विवरण मिलता है भगवान कृष्ण इस कृष्ण जीवन से पूर्व मध्यूनपान ऋषि महाराज थे। मध्यूनपान ऋषि महाराज जब देवयान में विचरण करते थे तो संसार को देखा करते थे कि यहां क्या हो रहा है। यह कौन सी प्रगति को जा रहा है। जब यहां वैज्ञानिक यन्त्रों का आविष्कार किया जा रहा था और राजा कंस के अत्याचारों से महापाप छा रहा था उस काल में मध्यूनपान ऋषि, माता देवकी के यहां आ करके उस महान् कष्ट यात्रा में माता के गर्भस्थल में धारण होकर माता यशोदा के गृह में पहुँचे। उन्होंने आ करके संसार का ऊँचा बनाया और अर्जुन से कहा कि मैं सब प्रकृति को जानता हूं परन्तु मैं उस कर्म को नहीं करूँगा जिस कर्म के करने से यह संसार तुच्छ बन जाए, मुझे तो वह कर्म करना है जिससे यह संसार ऊँचा बने। तो मुनिवरो! उसका नाम देवयान है जहाँ संसार को देखा जाता है.....।''

''मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कुछ महर्षि अटूटी महाराज का विवरण दिया कि वे देवयान में रमण करते थे जिनके जीवन की कुछ घटनाएं प्राप्त होती हैं।

उस समय देखो! उस बालक अटूटी ने माता के महान आदेशों का पालन करके ब्रह्मर्षि बन करके देवयान का प्रयत्न किया। धारणा ध्यान, समाधियों में संलग्न होकर इस अन्तरिक्ष को और तीनों प्रकार की वायु से जैसा मैंने पूर्वकाल में कहा है कि जैसे सोमहीति, मध्यान और इन्द्र वायु है, ऊपर के स्थल में जिसको देवयान कहा जाता है उसमें विचरने वाले बने। माता ने उसको आदेश दिया था कि वह वेद की अमूल्य निधि है। हे पुत्र! जब–जब यह लुप्त हो जाए तू उसको ऊंचा बनाना तो मुनिवरो! उस माता के बालक ने वेद की अमूल्य निधि को जानकर देवयान में रमण किया। इसके पश्चात् जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी से सूचना मिली है कि उसी आत्मा ने इस कलियुग में आकर माता के गर्भ में जन्म लिया और जन्म पाकर ऋषि दयानन्द' बनके संसार को ऊँचा बनाने का यत्न किया।''

"आज हमें देवयान की वार्ताओं को स्वीकार कर लेना चाहिए जो देवता हमें आदेश देकर यहां से देवयान चले जाते हैं और देवयान से आकर हमारे कल्याण के लिए सोचते है। आज उन देवताओं की वार्ताओं को स्वीकार कर संसार से ऊँचा बनना है।........." (पुष्प 4 प्रवचन 1)

"प्रभु! हम यह उच्चारण नहीं कर रहे कि आप मनुष्य बन कर आइये, परन्तु उन आत्माओं को प्रेरित करें जो परम्परा से यहां चली आ रही हैं और संसार का कल्याण कर देती हैं, वे यहां तेरी वेदवाणी का प्रसार करके उसी स्थान को रमण कर जाती हैं जहां से वे आत्मा आती है। प्रभु! यदि हमारी याचना को स्वीकार करे वे आत्मा अवश्य उत्पन्न करें यदि ऐसा न हुआ तो तेरे बनाए हुए विधान की, मनु महाराज के विधान की और आपकी वेद–वाणी रक्षा न हो सकेगी।" (पुष्प 4 प्रवचन 6)

लोमश मुनिः मेरे प्यारे अन्य ऋषियों ने ऐसा कहा है कि हमारा जन्म हो तो महान् इस पवित्र भूमि पर हो, जहाँ मेरी माताएं और मेरे प्यारे विधाता ब्रह्मचर्य का पालन करके अपने राष्ट्र को और अपने जीवन को ऊँचा बना गए हैं।"

"यहाँ तो उन आत्माओं की आवश्यकता है जो आत्माएं यहाँ आ करके वैदिक पथ को दर्शा जाएँ, यहाँ उन आत्माओं की आवश्यकता नहीं जो अपने स्वार्थ को पूर्ण करने वाली हों और वेद को विपरीत चलाने वाले हों। यदि यह संसार एक साथ मिलकर प्रभु से याचना करे कि हे प्रभु! हमारे मध्य में उस व्यक्ति को न भेज जो हमारी आत्माओं के उत्सव को हताश बना दे, वह आत्मा आए जो यहाँ आ करके वेदो का प्रसार करे और सब महान् वेदों को और संस्कृति को जानने वाले बनें।"

"एक समय विधाता महानन्द जी ने कहा कि आधुनिक काल में कुछ व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि जैसे महाराजा राम, महाराज कृष्ण और भी नाना जैसे वामन, मच्छ अवतार हुए इसी प्रकार कलियुग में निष्कलंक अवतार आने वाला है। परन्तु यह वाक्य यथार्थ हो जाएगा, और कैसे हो जाएगा कि कोई न कोई ऐसा वैज्ञानिक अवश्य उत्पन्न हो जायेगा, जो महाभारत जैसे वैज्ञानिक संग्राम के लिए उन यान्त्रिक रेखाओं को जानेगा जो महाराजा कृष्ण ने और त्रेता में लक्ष्मण ने जाना। यह अनुमान है कि जब तक भौतिक विज्ञान का विश्व संग्राम न होगा तब तक कोई ऐसा आत्मा उत्पन्न न होगा। आज का मानव कहता है कि यह महान् आत्मा कहाँ उत्पन्न होगी, कैसे होगी? तो यह तो क्या उच्चारण करेंगे, न प्रतीत कौन आत्मा कहां पुनः उत्थान होकर आ जाती है, यह हमारा निश्चय नहीं परन्तु ऐसा अनुमान है.....।" (पुष्प 5, प्रवचन 8, पृष्ठ 139 और 147)

१४. वारणावत

यह स्थान जिसको आज बरनावा ग्राम के नाम से जाना जाता है, मेरठ शहर से लगभग तेइस मील और बड़ौत से कोई ग्यारह मील के अन्तर पर है। इस गांव को देखने से ही स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह बहुत ही प्राचीन बस्ती है और यही महाभारत काल में वारणावत नगरी के नाम से प्रसिद्ध था। वहां जो खंडहर अथवा भगनावशेष हैं, वे उस बीते हुए अतीत काल की गाथा गा रहे हैं जिसके बारे में महर्षि महानन्द जी महाराज ने, जो श्रृङ्गी ऋषि के शिष्य हैं और जिनकी वाणी पूज्य ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों में प्रायः सुनने को मिलती है, उस बीते समय के गुप्त एवम् अज्ञात तथ्यों का निवारण किया।

लाक्षागृह ग्राम बरनावे के एकदम साथ ही स्थित है। यह मेरठ–बड़ौत सड़क पर एक छोटी सी पहाड़ीनुमा टीले पर है जिसके पास से दो नदियां हिण्डन व कृष्णा बह रही हैं और इस प्रकार यह रमणीक स्थली इन दो नदियों के संगम पर स्थित है। काल के प्रवाह के साथ–साथ इस स्थान के चहुँ ओर काफी मात्रा में परिवर्तन आया है क्योंकि जब सन् 1962 के नवम्बर, मास में वैदिक अनुसन्धान समिति के कुछ सदस्य यहां चतुर्वेद पारायण यज्ञ में सम्मिलित होने को एक बस द्वारा पहुंचे थे तब उस टीले के चारों ओर बहुत ही सुन्दर दृश्य उपस्थित था, खुला मैदान, नदियों का निर्मल जल, जिसमें प्रातःकाल की बेला में अनेक नर–नारी स्नान करके आनन्दित होते और वहां की व्याप्त सुगन्धि से अपने को धन्य मानते। किन्तु अब नदियों का जल अति अशुद्ध हो गया है तथा टीले के चहुँ ओर जो मैदान थे उन्हें खेती करने में प्रयोग कर लिया गया है जब कुछ वर्षों में ही इतना परिवर्तन आ गया, तो भला सहस्त्रों–सहस्त्रों वर्षों में तो क्या कुछ नहीं हो जाता।

महानन्द जी के कथनानुसार यहां प्राचीन काल में भीम और उनके पुत्र घटोत्कच की एक सुन्दर विज्ञानशाला थी। वह ऐसी विज्ञानशाला थी जिसमें अनुसन्धान होता रहता था तथा उनकी देखरेख में तत्कालीन वैज्ञानिकों ने अनेक उपग्रह निर्माण किए जो आज भी चन्द्रमा से ऊपर के कक्ष में भ्रमण कर रहे हैं। महाराजा व्यास व महाराजा प्रीति के द्वारा इन नाना प्रकार की विज्ञान शालाओं में परमाणुवाद पर विचार मंथन चलता और उनके द्वारा अनेक ग्रह, उपग्रह रूपी यानों का निर्माण हुआ।

जिस समय भीष्म–पितामह ने पाण्डु पुत्र धृतराष्ट्र के पुत्रों के लिए विद्याध्ययन, अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षा हेतु गुरु द्रोणाचार्य द्वारा एक स्थल बनवाया था, वह क्षेत्र वारणावत पुरी ही था। जहां धनुर्विद्या के भिन्न–भिन्न पक्षों पर अनुसन्धान होता रहता था तथा ज्ञान–विज्ञान का केन्द्र था। महाराजा द्रोणाचार्य उस समय के अद्वितीय बुद्धिमान व अस्त्र–शस्त्रों के क्षेत्र में धुरंधर शिक्षा–शास्त्री थे। यहां कर्ण, अर्जुन, भीम आदि–आदि बलिष्ठ व वीर योद्धा नाना प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करते थे। इसी पुण्य स्थली पर भीम पुत्र घटोत्कच और 'महाराजा अर्जुन का बहुत विशाल पुस्तकालय रहा है। जिसमें सूर्य और चन्द्र विज्ञान पर इतना सुन्दर पुस्तकों का भण्डार था, जिनके द्वारा अनेक लोक–लोकान्तर, ग्रह–उपग्रह, नक्षत्रों आदि की विशेषताएं तथा किस विधि से सूर्य–चन्द्रादि की किरणें इस पृथ्वी लोक पर नाना प्रकार की धातुओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होती है, यह सब वर्णन था। इस पुस्तकालय में महाराजा हनुमान जी के हाथ का लिखा हुआ सूर्य विद्या पर दो हजार पृष्ठ का एक ग्रन्थ भी था। महाराज हनुमान जी सूर्य विद्या के महान् विशेषज्ञ थे। क्योंकि यह विद्या उनके कंठस्थ थी इसलिए यह प्रचलित हो गया कि उन्होंने सूर्य को मुख में ले लिया था। महाराजा घटोत्कच ने एक पुस्तक की रचना की थी जो अनेक यन्त्रों के वैज्ञानिक निर्माण की विधि के ऊपर लिखी गई थी, जिसमें चौदह सहस्त्र पृष्ठ थे और उसका नाम था 'सुरंगतनामी'। इस पुस्तक में एक ऐसे यन्त्र का वर्णन था जिसको सुरंगतनाम पुकारा जाता था और वह इतनी तीव्र गति से चलता था कि वह शत्रु को हनन करके पुन; शस्त्रधारी के प्रति लौट आता था। इसके अतिरिक्त अन्य भी विविध यन्त्रों का विस्तार पूर्वक लेखन उस महान् पुस्तक में लेखनीबुद्ध था। इसी प्रकार महाराजा अर्जुन ने भी अपने मंगल मंडल के तीन वर्ष व तीन मास प्रवास के समय में एक 'मंगल केतुक' नामक पुस्तक लिखी थी जिसमें उन्होंने उस लोक में जो विशेष विद्या अध्ययन की थी और जिन–जिन यन्त्रों, अस्त्र–शस्त्रों में विशेषता प्राप्त की थी, उन सबका विवरण दिया था। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि ये सब साहित्य तथा और भी सहस्रों अमूल्य रचनाएं बाद में पनपे मत–मतान्तरों के अनुयायियों ने अग्नि के मुखारविन्द में अर्पितु कर दीं।

यहीं दुर्योधन ने लाक्षागृह का निर्माण करवाया था जिसमें पांचों पाण्डवों को जीवित ही जलाने की योजना बनाई गई थी किन्तु विदुर जी की सावधानी से पांचों भाई अपनी माता कुन्ती देवी के साथ वहाँ से सुरंग के मार्ग से निकल कर चले गये थे। इस सुरंग का भग्नावशेष अभी भी वहां पर देखा जा सकता है और जो कुछ आधुनिक तथाकथित इतिहासवेत्ता महाभारत युद्ध तथा इससे सम्बन्धित बातों को काल्पनिक बतलाने का दु:साहस करते हैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाण उनको स्वयं जाकर देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि और भी कुछ वैज्ञानिक प्रमाणों की आवश्यकता है तो महानन्द जी के कथनानुसार चन्द्रमा के ऊपरलें कक्ष में आज भी भीम व घटोत्कच द्वारा निर्मित यान विद्यमान हैं और वहां जाकर उन यानों को देखें जिन पर इन दोनों पिता–पुत्र के (अर्थात् भीम तथा घटोत्कच) के नाम अंकित हैं।

इसके पश्चात् यहां राजा परीक्षित के काल में न्यायालय भी रहा। महाराजा परीक्षित अभिमन्यु के पुत्र तथा अर्जुन के पौत्र थे। तदुपरान्त इसी प्रकार से काल व्यतीत होता गया और फिर चन्द्रकान्त नामक वैश्य ने एक सुन्दर भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया तथा एक कूप भी बनवाया। पर जब यवनों का राज्य स्थापित हुआ तो उन्होंने सर्वत्र मारकाट करनी प्रारम्भ कर दी और यहां के पुजारियों को व पंडितों को मार डाला तथा मन्दिर को तोड़कर नष्ट–भ्रष्ट कर डाला। फिर तो यहां एक प्रकार से श्मशान भूमि बन गई। एक सरबुदीन नामक यवन ने लगभग बाईस ब्राह्मण कन्याओं से बलात्कार करके अपनी भुजाओं से नष्ट करके यहीं उनका दमन किया। यहां यवन काल में लगभग सवा मन जनेउओं को भी उतारते देखा गया तथा जो भी उनको धारण करने वाले थे या तो उनको कत्ल कर दिया गया या मुसलमान बना लिया गया। इस एक स्थान की घटना से ही प्रतीत होता है कि यवन काल में यहां की जनता पर कितने अत्याचार किए गए थे। उस समय इस

कूप में जिसका वर्णन ऊपर आया है (यहां आज ट्वूवैल बना हुआ है) पांच वैश्य कन्याओं को बलात्कार करके मारकर गिरा दिया गया। यवनों के समय में यही स्थान नहीं अपितु सारा भारतवर्ष इसी प्रकार रक्त रंजित होता रहा था और जो कभी पुण्य भूमि के नाम से विख्यात थी वह नर्कतुल्य बन गई थी। जगह–जगह दुराचार, अत्याचार, कदाचार और दुष्टाचार का बोलबाला था। हिन्दू संस्कृति अथवा आर्य सभ्यता का सर्वथा लोप हो चुका था और जहां भी दृष्टि डालो वहां ही हृदय–विदारक दृश्य उपस्थित थे।

लगभग 150 वर्ष पूर्व इसी स्थान पर एक ब्राह्मण आ गया और उसने यवनों से यहां जल की याचना की। उसे क्षुधा लग रही थी। उसके मुख से किन्हीं यवन पुत्रों के सामने कटु शब्दों का प्रयोग हो गया; बस फिर क्या था उसे अनेक प्रकार से कष्ट दिया गया तथा शस्त्र भय दिखाकर गौ का रक्त उसे पान कराया और फिर कत्ल कर दिया गया। इस प्रकार चहुँ ओर जहां भी इनका जोर चला वहीं ब्राह्मण, गौ तथा स्त्री जाति पर विशेष रूप से अत्याचार किए और यह स्थली जहाँ कभी प्राचीन काल में महाराज जनमेजय व महर्षि जैमिनी आदि ने विराजमान होकर अनेक प्रकार के यागों का आयोजन किया था, वहाँ मध्यकाल में रुधिर की नदियां प्रवाहित होती रही है। वह भी एक काल था जब यहाँ गुरु द्रोणाचार्य जी महाराज याग करते थे तथा महाराजा जैमिनी मुनि जी ने इस स्थली पर ही दर्शनों की मीमांसा करते हुए अपनी लेखनी को उपराम दिया।

महानन्द जी के कथनानुसार एक बार उन्होंने भी इस स्थान पर चारों वेदों से याग किया है। एक बार महर्षि व्यास जी ने चारों वेदों से याग किया है। एक बार जैमिनी जी ने चारों वेदों से याग किया है और इसके बाद सबसे पहला चतुर्वेद पारायण याग 1962 में पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज ने किया था।

एक समय था जब वारणावत नगरी का परकोटा व क्षेत्र बड़ा विशाल था। यहाँ लगभग बाईस लाख नर–नारी वास करते थे तथा यह उन पांच ग्रामों में एक था जिसकी मांग महाराजा श्री कृष्ण योगीराज ने पाण्डवों की ओर से दुर्योधन से की थी और जिसके उत्तर में उसने कहा था–

'सूच्यग्रं नेव दास्यनि बिना युद्धे न केशवः'

अर्थात् हे केशव! बिना युद्ध के सुंई की नोक के तुल्य भी भूमि मैं पाण्डवों को नहीं दूँगा, पांच ग्रामों की तो बात ही क्या! उस काल में इसे वारणावत पुरी कहते थे और ये दो नदियाँ हिण्डन व कृष्णा इस स्थली से पांच कोश की दूरी पर थीं।

अतः इस पावन भूमि ने अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। कभी यज्ञशालायें थीं, शिक्षणालय थे, ऋषि मुनि एवं राजकुमार यहाँ आकर विचार–विमर्श करते रहते थे। फिर यहाँ देवालय का निर्माण हुआ और यमन काल में श्मशान भूमि में परणित हो गया। अब प्रभु कृपा से पुनः उसी स्थली पर एक संस्कृत महा विद्यालय तथा छः यज्ञशालाओं का विधिवत् निर्माण हो चुका है, अनेक कमरे बन चुके हैं और कुछ भूमि में खेती भी होती है। इसके अतिरिक्त तीन विद्युत कूप (ट्यूब वैल) भी बना लिए गए हैं और वहां बिजली आदि सभी आधुनिक सुविधाओं का प्रबन्ध हो गया है। जो कुछ कमी है, वह भी शनै–शनै मिटाने का निरन्तर प्रयास जारी है। यह सब कार्य पूज्य ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज जिनको इस भूमि से विशेष लगाव है, के सद्–प्रयत्नों द्वारा हुआ है और यह स्थली पुनः वही प्राचीन ख्याति प्राप्त कर रही है।

इस स्थान पर हर वर्ष तीन महायज्ञ भी होते हैं। रक्षा–बन्धन और पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के जन्मोत्सव पर तो केवल सामवेद पारायण याग ही होता है परन्तु होली से लगभग एक सप्ताह पूर्व चतुर्वेद पारायण याग होता है जो आठ दिन तक चलता है और जिसमें दूर–दूर से सहस्रों नर–नारी भाग लेते हैं। हर विषय के विद्वान उसमें पधारते हैं जिनसे आई जनता पूरा–पूरा लाभ उठाती है और अपनी शंकाओं का निवारण करती है। दोनों समय वेदपाठ के साथ पूज्य ब्रह्मर्षि जी महाराज के योग–मुद्रा में प्रवचन भी होते थे जिनमें वह पुरातन काल का इतिहास, लोक–लोकान्तरों की वार्ताएं, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक तथ्यों पर भी प्रकाश डालते। उनके यह प्रवचन एवं समय–समय पर और स्थानों पर इसी प्रकार के दिये गए प्रवचन टेप कर लिए जाते थे और फिर उनको पुस्तक रूप देकर जनता तक पहुंचाया जा रहा है। यह कार्य दिल्ली से

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.) नई दिल्ली कर रही है जो इनके प्रकाशन एवं प्रचार कार्य के लिए बनाई गई है। उनका सारा साहित्य बरनावा महाविद्यालय से भी प्राप्त हो सकता है।

अन्त में हमारी उस प्रभु से प्रार्थना है कि ब्रह्मर्षि जी महाराज ने इस उजड़ी हुई पुण्य भूमि को फिर से उसका पुराना गौरव देने का जो व्रत ले रखा है वह पूर्ण हो। यह हमारा पुराना तीर्थ स्थान जो ऋषियों–मुनियों की यज्ञ स्थली और तपो भूमि रही है फिर से आबाद हो, विद्वानों का केन्द्र बने और पुरातन काल की भांति दूर–दूर से लोग यहां आकर अपनी शंकाओं का निवारण, अपने ज्ञान में वृद्धि और शान्ति प्राप्त करें।

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के सम्बन्ध में पूज्यपाद ब्रह्मर्षि योगेश्वरानन्द जी महाराज (भूतपूर्व बाल ब्रह्मर्षि श्री व्यासदेव जी) द्वारा 14.4.62 को योग निकेतन स्वर्गाश्रम में ब्रह्मर्षि जी के दो प्रवचनों के सुनने के पश्चात्

शुभ सम्मति

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी से हमारी हिन्दू व आर्य जाति को बड़ा गौरव है। ऐसी महान आत्माएं हमारे देश में इस युग में होने लगी हैं। इनके व्याख्यान विद्वतापूर्ण हैं। ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी वास्तव में वेद का सुन्दर प्रतिपादन करते हैं। इनका उपक्रम उपसंहार विद्वानों की तरह होता है। अब रही योग की दृष्टि, यदि ब्रह्मर्षि जी को मेरे पास कुछ काल, कुछ दिन, महीनों नहीं, रहने का अवसर मिले तो ठीक निर्णय दे सकूंगा कि योग के साथ इनका क्या सम्बन्ध है। यह किस प्रकार समाधिष्ठ होकर अपने ज्ञान का प्रसार करते हैं, यह हमारे जैसे योगियों के लिए बड़ा गौरव है, क्योंकि समाधि के आधार पर चित्त की एकाग्रता पर नेत्र बन्द करके यह अपने विज्ञान का प्रवचन करते हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है और हमारे आर्य धर्म का प्रचार है, हमारी पुरानी संस्कृति का प्रसार है; हमें इस बात का बड़ा गौरव है।

अर्न्तयोगी ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के विषय में स्वामी योगेश्वरानन्द जी महाराज की अप्रैल 1972 में प्रवचन सुनने के पश्चात्

शुभ सम्मति

यह हमारा परम सौभाग्य है कि ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी जैसे योगी अब भी इस भारत की पवित्र भूमि पर विद्यमान हैं। यह प्रभु की हम पर अपार कृपा है।

एक बार ध्यानावस्था में मैंने भी ब्रह्मर्षि जी के समान अपनी गर्दन हिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु मेरा सिर चकरा गया। परन्तु ब्रह्मर्षि जी की पूरे प्रवचन के समय में गर्दन दाएं–बाएं हिलती रहती है और वाक्य के बोलने में कोई त्रुटि नहीं आती।

जिस प्रकार यह वेद–मन्त्रों का स्वर सहित उच्चारण करते हैं यह हमें अपने पुराने ऋषियों और वेद के ज्ञान की याद दिलाती है। इस प्रकार ब्रह्मर्षि जी इस पीढ़ी को अपनी वैदिक संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हैं। मुझे कई योगियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है; मैं भी समय–समय पर ध्यानावस्था में आध्यात्मिक प्रवचन करता हूँ। उस समय मुझे अपने आस–पास का कुछ ध्यान नहीं रहता परन्तु ब्रह्मर्षि जी में अपने पूर्व जन्मों के आधार पर कुछ विशेषता है।

उनके प्रवचन का विषय नित नया होता है। वह अपने विषय में इतना गहरा जाते हैं कि किसी–किसी समय तो वेदों के महान पंडित भी उस गहराई तक नहीं पहुंच पाते।

उनके एक प्रवचन में जो योग निकेतन में हुआ था मैंने उनके हाथ और सिर को जोर से पकड़ कर रोकने का यत्न किया परन्तु मैं ऐसा न कर सका और उनका प्रवचन चालू रहा। जैसे कुछ भी न हुआ हो।

अन्त में मैं अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर यह कहना चाहता हूँ कि ध्यानावस्था में योगी को अपने आप–पास का कोई भास नहीं होता परन्तु ब्रह्मर्षि जी इस अवस्था में भी वैदिक ज्ञान की धारा बहाते रहते हैं।

डॉ. रणबीर सिंह शास्त्री, एम., ए., पी., एच., डी.
विद्याभास्कर, वेद आयुर्वेद–व्याकरण, साहित्याचार्य
इन्द्र भवन, 1/13 पंच कुइयाँ मार्ग, आगरा,–2 की
शुभ सम्मति

अत्यन्त सन्निकट से अध्ययन के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि श्री ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी अशिक्षित होते हुए भी बड़े ही तर्क पूर्ण सारगर्भित, विज्ञान सिद्धान्तों से सम्मत वैदिक एवं शास्त्रीय प्रवचनों को शयनावस्था में ओजस्वी भाषा में करते हैं। सारे ही प्रवचन और वेद–मन्त्र एक दूसरे से नहीं मिलते, उदाहरण अवश्य ही विभिन्न प्रवचनों में आ जाते हैं। भाषण शैली इतनी युक्ति–युक्त, संस्कृत एवं वैदिक शब्दों से अतिरंजित होती है कि व्युत्पन्न विद्वान भी इस प्रकार के प्रवचन करने में कम समर्थ हो सकता है। यद्यपि इनके पारायण के मन्त्र वर्तमान वेद संहिताओं में नहीं मिलते, परन्तु उच्चारण शैली स्वर ध्वनि आदि की समानता होने से आर्य परम्परा ज्ञात होती है किसी भी शाखा सम्प्रदाय की वैदिक संहिताओं के ये मंत्र है ऐसा ब्रह्मर्षि जी के प्रवचन से ध्वनित होता है, प्रवचन कर्ता के वेदों, यज्ञों और वैदिक संस्कृति पर अगाध संस्कृति पर अगाध श्रद्धा एवं अक्षुण्ण विश्वास है। विश्व के समस्त विज्ञान, धर्म संकृति, विद्या और विभिन्न कलाओं तथा ज्ञान का भण्डार व उद्गम भूमि वेद ही है इन विषयों पर प्रवचनों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के सम्बन्ध में सार्वदेशिक आर्य
प्रतिनिधि सभान्तर्गत धर्मार्थ सभा के प्रधान,
गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक, विद्यावाचस्पति
श्री पंडित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की
शुभ सम्मति

मैंने ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के 11 से 15 जून तक 5 प्रवचन लोधी कालोनी और विनय नगर में सुने। इनसे पूर्व भी एक प्रवचन वर्ण–व्यवस्था पर विनय नगर में सुना था। इन प्रवचनों में अद्वैतवाद, मूर्तिपूजा, भूत–प्रेत जन्म से वर्ण–व्यवस्था आदि का निराकरण करते हुए वैदिक सिद्धान्तों का प्रबल समर्थन देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के उस विशेष अवस्था में दिए प्रवचनों को लोग ध्यान से और श्रद्धापूर्वक सुनते रहे हैं। यह हर्ष की बात है कि इससे वैदिक धर्म के प्रचार में सहायता मिलेगी।

मेरे विचार में यह माना नहीं जा सकता है कि इनको किसी ने रटवा रखा है अथवा यह सब केवल पाखण्ड है। यद्यपि ऐसा कैसे होता है कि एक अशिक्षितप्राय व्यक्ति ऐसे उत्तम, प्रभावशाली प्रवचन विशेष अवस्था में कर सके, यह मनोविज्ञान तथा योग दृष्टि से विचारणीय बात है, जिस पर पूर्ण अनुसन्धान जारी है, तथापि उच्चारण आदि की कुछ त्रुटियों को छोड़कर यह प्रवचन मुझे अति उपयोगी प्रतीत हुए हैं जिनसे वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि होती है। शेष विषयों पर अनुसन्धान अपेक्षित है।–धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

आर्यजगत् में संस्कृत साहित्य के महापण्डित,
व्याकरण–वेदान्त–साहित्य–आयुर्वेदाचार्य
डाक्टर श्री हरिदत्त जी शास्त्री, पचदशतीर्थ, एम. ए., पी.एच.डी.,
संस्कृत विभागाध्यक्ष डी. ए. वी. कालेज, कानपुर की ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के सम्बन्ध में
शुभ सम्मति

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तः प्राज्ञः सन्नपि प्रज्ञवत्।
यानि प्रवचनान्याख्त्: तानि विस्मापकानि में।। 1 ।।
नह्यत्र कुहना कश्चित्, न दम्भः किन्तु पूर्वजाः।
दशा विशेष संस्कारा, उद्बुध्यन्ते मतं मम्।। 2।।

भावार्थ—अशिक्षित होते हुए भी ब्रह्मर्षि जी जो प्रवचन करते हैं वह विद्वत्तापूर्ण एवम् आश्चर्यजनक हैं। इसमें न कोई दम्भ है और न पाखण्ड है। विशेष स्थिति में पूर्वजन्म के संस्कार जागृत हो जाते हैं ऐसी मेरी सम्मति है।

डाक्टर श्री हरिदत्त जी शास्त्री

'वे परमेश्वर में मुक्ति सुख को प्राप्त हों, उसके भोग के पश्चात् जब मुक्ति सुख की अवधि पूरी हो जाती है तब वहां से छूट कर संसार में आते (सत्यार्थ प्रकाश समु. 5 पृ. 160द्ध। ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी ने लोदी रोड, नई दिल्ली में 2.4.62 को 'प्रलयकाल में सृष्टि और परमात्मा का स्वरूप'' पर प्रवचन करते हुए कहा, ''महानन्द जी ने एक समय प्रश्न किया था कि जब जीव को मुक्ति से लौटना पड़ता है तो हमें (मुक्ति प्राप्त करने का) प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिए। हमने आदि दार्शनिकों के आधार पर एक समय यह उत्तर दिया कि संसार में सुख क्षण भंगुर है। इसके समक्ष मुक्ति का सुख कितना महान् कितना विशाल और कितना विस्तृत है। उस परम आनन्द के सामने यह सांसारिक सुख कदापि महत्त्व नहीं पा सकता। मुक्त आत्मा ब्रह्म की पूर्णायु (महाकल्प) तक मोक्ष अवस्था में रमण करता है और संसार के दुःखो से छूट जाता है। (पुष्प न. 1 प्रवचन 2द्ध।

'ब्रह्मर्षि जी ने 12.3.62 को आर्य समाज हनुमान रोड दिल्ली में प्रवचन करते हुए बताया कि महानन्द जी से ज्ञात हुआ है कि ऋषि दयानन्द द्वापर काल में महर्षि अटूटी थे।

28.7.63 को मालवीय नगर में प्रवचन देते समय बताया कि महर्षि अटूटी की माता सोमतत्ती और पिता महर्षि कोलशती थे। 6.1.64 को बताया कि महर्षि अटूटी का नाम आगे चलकर महर्षि शमीक पड़ा। 12.11.66 को ऋषि निर्वाण उत्सव पर बताया कि ऋषि दयानन्द अपने पूर्व के 13 जन्मों में बाल ब्रह्मचारी और ऋषि थे उनके 13 जन्मों का वृतान्त पुष्प 6 में पढ़ें।